

जैन संस्कार पाठ्यक्रम

भाग-10



अनुक्रम

| क्रं. | विभाग | पृष्ठ संख्या | अंक |
|------------|--|--------------|-----|
| | | | 100 |
| I | सूत्र विभाग | | 35 |
| | 1. श्री दशवैकालिक सूत्र के 9वें अध्ययन का प्रथम व चतुर्थ उद्देशक | 8 | |
| | 2. श्री उत्तराध्ययन सूत्र का 16वां अध्ययन (मूल, अर्थ) | 19 | |
| II | तत्त्व विभाग | | 25 |
| | 1. कर्म प्रज्ञप्ति-1 | - | |
| | 2. गर्भ का थोकड़ा | 30 | |
| III | कथा विभाग | | 15 |
| | 1. आत्मबली और दृढधर्मी महासती श्री रंगूजी म.सा. | 34 | |
| | 2. रोहिणेय चोर (सत्संग का महत्व) | 38 | |
| | 3. वीर लोकाशाह | 41 | |
| IV | काव्य विभाग | | 10 |
| | 1. पालो दृढ आचार जैनों सब मिलकर.... | 45 | |
| | 2. अमूल्य तत्त्व विचार | 46 | |
| V | सामान्य ज्ञान विभाग | | 15 |
| | 1. साधक एक परिचय | 47 | |
| | 2. सचित्त-अचित्त विवेक | 51 | |
| | 3. सम्मूर्च्छिम थोकड़ा | 67 | |

अस्वाध्यायिक

निम्नलिखित बत्तीस अस्वाध्यायिक के कारणों को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए।

अंतरिक्ष संबंधी 10 अस्वाध्यायिक

| क्र. नाम | अंतरिक्ष संबंधी 10 अस्वाध्याय | काल मर्यादा |
|-------------|--|-------------|
| 1. उल्कापात | रेखायुक्त (पीछे पूँछ के समान) या प्रकाश युक्त तारे का गिरना | एक प्रहर तक |
| 2. दिग्दाह | किसी दिशा में महानगर जलने के समान ऊपर प्रकाश नीचे अंधकार दिखाई देना। | एक प्रहर तक |
| 3. गर्जित | मेघ गर्जना होना। | दो प्रहर तक |
| 4. विद्युत् | बिजली चमकना। | एक प्रहर तक |

नोट:- सूर्य के साथ आर्द्रा नक्षत्र के योग से लेकर स्वाति नक्षत्र के योग होने तक मेघ गर्जना और बिजली चमकना संबंधी अस्वाध्यायिक नहीं माना जाता।

| | | |
|---------------|--|-----------------|
| 5. निर्घात | बादल के होने पर या न होने पर व्यन्तर कृत महागर्जना के समान ध्वनि का होना। वर्तमान में बिजली कड़कना/गिरना इसके अन्तर्गत माना जाता है। | आठ प्रहर तक |
| 6. यूपक | शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया व तृतीया को रात्रि की प्रथम पौरुषी पर्यन्त। ये पक्षी के बाद की तीन रात्रियाँ समझना, चाहे पक्षी चतुर्दशी की हो या अमावस्या की। | प्रहर रात्रि तक |
| 7. यक्षादीप्त | आकाश में एक दिशा में बीच-बीच में (एक-एक कर) व्यन्तर (देवता) कृत विद्युत् के समान प्रकाश होना | एक प्रहर तक |
| 8. धूमिका | काली धूँवर (अंधकार युक्त, धुँए के समान) का आना | जब तक रहे |
| 9. महिका | श्वेत धूँवर का आना | जब तक रहे |
| 10. रज उद्घात | चारों दिशाएँ धूल से भर जाने पर सब ओर अंधकार जैसा दिखाई दे (चाहे वायु हो या न हो) | जब तक रहे |

(नोट:- दिग्दाह एवं यक्षादीप्त वर्तमान में कम दृष्टिगोचर होते हैं)

औदारिक संबंधी अस्वाध्यायिक

11-13.हड्डी,
रक्त, मांस

“तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय संबंधी अस्वाध्यायिक”

- | | |
|---|---|
| <ul style="list-style-type: none"> ● रक्त सहित चर्म, रूधिर, मांस, अस्थि, अण्डा, अण्डे का कलल या पशु-पक्षी का शव आदि साठ हाथ के भीतर पड़े हो तो उपर्युक्त सभी जब से जीव रहित हुए तब से (चर्म, रूधिर, मांस आदि के रहने पर भी तीन प्रहर के बाद अस्वाध्यायिक नहीं रहता) ● किसी तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय (बड़ी कायवाले) की जहाँ घात (तिर्यञ्च या मनुष्य के द्वारा) हुई हो तो वहाँ चारों ओर साठ हाथ तक (कम से कम 3 प्रहर टालना आवश्यक है, चाहे सूर्योदय हो भी गया हो) ● साठ हाथ के भीतर जर वाले पशुओं की प्रसूति हो तो जर गिरे तब तक और जर गिरने के बाद ● साठ हाथ के भीतर बिना जर वाले पशुओं की प्रसूति के बाद नोट:-पका हुआ मांस अस्वाध्यायिक नहीं है। | <p>तीन प्रहर तक</p> <p>अगला सूर्योदय न होवे तब तक</p> <p>तीन प्रहर तक</p> <p>तीन प्रहर तक</p> |
|---|---|

“गर्भज मनुष्य संबंधी अस्वाध्यायिक”

- | | |
|---|---|
| <ul style="list-style-type: none"> ● सौ हाथ के भीतर रक्त सहित चर्म, खून, मांस यदि पड़े हो तो ये पदार्थ जब से जीव रहित हुए, तब से (उसके बाद नहीं, चाहे वह पदार्थ वहाँ पड़ा हो या न हो) ● जिस गली/गृहपंक्ति में शव हो उस गली/गृहपंक्ति में ● मनुष्य की हड्डी सौ हाथ के भीतर हो तो जब से जीव रहित हुई तब से (12 वर्ष के बाद अस्वाध्यायिक नहीं। 12 वर्ष के पहले ही यदि अस्थि जली हुई हो या वर्षा आने से धुल गई हो, तो जलने व धुलने के बाद अस्वाध्यायिक नहीं रहता) <p>(नोट:-खून यदि विवर्ण हो गया हो, यानि उसकी पर्याय/रंग बदल गया हो तो अस्वाध्यायिक नहीं होता)</p> <ul style="list-style-type: none"> ● बालक-बालिका के जन्म से 100 हाथ के भीतर | <p>आठ प्रहर तक</p> <p>जब तक शव नहीं निकाला जाए बारह वर्ष तक</p> <p>बालक हो तो 7 दिन/बालिक</p> |
|---|---|

| | | |
|------------------|---------------------------------------|--|
| 14. अशुचिसामन्त | मल, मूत्र, कलेवर आदि अशुभ पदार्थ | दिखाई दे या उनकी दुर्गन्ध आये |
| 15. श्मशानसामन्त | श्मशान भूमि के चारों ओर | 100-100 हाथ तक |
| 16. चन्द्रग्रहण | चन्द्रग्रहण जिस क्षेत्र में दिखे वहाँ | जघन्य 8 प्रहर और उत्कृष्ट 12 प्रहर तक |
| 17. सूर्यग्रहण | सूर्यग्रहण जिस क्षेत्र में दिखे वहाँ | जघन्य 12 प्रहर और उत्कृष्ट 16 प्रहर तक |

चंद्रग्रहण, सूर्यग्रहण जिस क्षेत्र में दिखे वहाँ अस्वाध्यायिक समझना।

| | | |
|---|---|---------------------------|
| 18. पतन | प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, राज्यपाल, मुख्यमंत्री के कालगत हो जाने पर जिस क्षेत्र में वातावरण विक्षोभ हो तो | जब तक विक्षोभ रहे |
| 19. राजव्युद्ग्रह | युद्ध भूमि के आसपास | जब तक युद्धजनित क्षोभ रहे |
| 20. उपाश्रय में औदारिक शरीर | उपाश्रय की सीमा में तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय या मनुष्य का शव पड़ा रहे | जब तक शव पड़ा रहे तब तक |
| 21-28. चार पूर्णिमा और इसके बाद की प्रतिपदा | आषाढ, आश्विन, कार्तिक व चैत्र-इन चारों पूर्णिमाओं को तथा इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदाओं को | दिन-रात |

- जिस दिन पंचांग (कैलेण्डर) में पूनम व प्रतिपदा बताई हो उस दिन अस्वाध्यायिक मानना।
- यदि दो पूनम हो तो दोनों पूर्णिमा को अस्वाध्यायिक मानना, प्रतिपदा को नहीं।
- यदि दो प्रतिपदा हो तो प्रथम प्रतिपदा और पूर्णिमा को अस्वाध्यायिक मानना।
- यदि पूर्णिमा क्षय हो तो चतुर्दशी और प्रतिपदा को अस्वाध्यायिक मानना।
- यदि प्रतिपदा क्षय हुई हो तो चतुर्दशी व पूर्णिमा को अस्वाध्यायिक मानना।

| | | |
|-----------------|---|---------------|
| 29-32. संधि समय | सूर्योदय एवं सूर्यास्त, मध्याह्न व अर्द्धरात्रि | एक-एक मुहूर्त |
| | इन चार सन्ध्याओं में | |

(सूर्योदय एवं सूर्यास्त के पूर्व व पश्चात् आधा-आधा मुहूर्त और दिन व रात्रि के मध्य भाग के पूर्व व पश्चात् आधा-आधा मुहूर्त तक अस्वाध्यायिक माना जाता है।)

‘विनय समाधि’ नामक नौवें अध्ययन का पहला उद्देशक

थंभा व कोहा व मयप्पमाया, गुरुस्सगासे विणयं न सिक्खे।

सो चेव उ तस्स अभूइभावो, फलं व कीयस्स वहाय होइ ॥१॥

अन्वयार्थ- जो साधु (थंभा) अहंकार से (व) अथवा (कोहा) क्रोध से (व) अथवा (मयप्पमाया) मायाचार से अथवा प्रमाद से (गुरुस्सगासे) गुरु महाराज के पास (विणयं) विनय धर्म की (न सिक्खे) शिक्षा प्राप्त नहीं करता है तो (सो चेव) के अहंकारादि दुर्गुण (उ) निश्चय से (तस्स) उस साधु के (अभूइभावो) ज्ञानादि सद्गुणों को उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं (व) जिस प्रकार (कीयस्स) बांस का (फलं) फल (वहाय होइ) स्वयं बांस को नष्ट कर देता है अर्थात् जैसे बांस के फल आने पर बांस का नाश हो जाता है उसी प्रकार साधु की आत्मा में अविनय उत्पन्न करने वाले अहंकारादि दुर्गुण पैदा होने पर चारित्र्य का नाश हो जाता है ॥१॥

जे यावि मंदे त्ति गुरुं विइत्ता, डहरे इमे अप्पसुए त्ति नच्चा।

हीलंति मिच्छं पडिवज्जमाणा, करंति आसायण ते गुरुणं ॥२॥

अन्वयार्थ- (जे) जो साधु (गुरुं) गुरु को (मंदे त्ति) यह मंद बुद्धि है (विइत्ता) ऐसा समझकर (यावि) अथवा (इमे) यह (डहरे) बालक है (अप्पसुए त्ति) अल्पश्रुत है ऐसा (नच्चा) मानकर (हीलंति) हीलना-निन्दा करते हैं (ते) वे (गुरुणं) गुरुजनों की (आसायण) आशातना (करंति) करते हैं जिससे उन्हें (मिच्छं) मिथ्यात्व की (पडिवज्जमाणा) प्राप्ति होती है ॥२॥

पगईइं मंदा वि भवति एगे, डहरा वि य जे सुय-बुद्धोववेया।

आयारमंता गुण-सुट्ठियप्पा, जे हीलिया सिहिरिव भास कुज्जा ॥३॥

अन्वयार्थ- (एगे) बहुत-से मुनि वयोवृद्ध होने पर भी (पगईइं) स्वभाव से (मंदा वि) मंदबुद्धि (भवति) होते हैं (य) तथा (जे) बहुत-से (डहरावि) छोटी अवस्था वाले साधु भी (सुय-बुद्धोववेया) शास्त्रों के ज्ञाता एवं बुद्धिमान् होते हैं-ज्ञान में न्यूनाधिक होने पर भी (आयारमंता) सदाचारी और (गुण-सुट्ठियप्पा) मूलगुण-उत्तरगुणों का सम्यक् पालन करने वाले गुरुजनों का अपमान नहीं करना चाहिए क्योंकि (सिहिरिव) जिस प्रकार

अग्नि ईंधन को जलाकर भस्म कर देती है उसी प्रकार (जे हीलिया) गुरुजनों की हीलना उसके ज्ञानादि गुणों को (भास कुज्जा) नष्ट कर देती है अर्थात् गुरुजनों की आशातना करने से ज्ञानादि गुणों का नाश हो जाता है ॥३॥

जे यावि नागं डहरे त्ति नच्चा, आसायए से अहियाय होइ।

एवाऽऽयरियं पि हु हीलयंतो, नियच्छई जाइपहं खु मंदे ॥४॥

अन्वयार्थ- (जे यावि) जो कोई मूर्ख मनुष्य (डहरे त्ति) यह छोटा है-इस प्रकार (नच्चा) जानकर (नागं) सांप को (आसायए) छेड़ता है-लकड़ी आदि से उसे सताता है (हु) तो (से) वह (अहियाय) उस सताने वाले के लिए अहितकारी (होइ) होता है अर्थात् उसे काट खाता है। (एव) उसी प्रकार (आऽऽयरियं पि) आचार्य महाराज की (हीलयंतो) हीलना करने वाला (मंदे) मन्दबुद्धि शिष्य (खु) निश्चय ही (जाइपहं) एकेन्द्रियादि जातियों में (नियच्छई) चला जाता है अर्थात् जन्म-मरण के चक्र में फंसकर अनन्तसंसारि बन जाता है ॥४॥

आसीविसो यावि परं सुरुट्ठो, किं जीयनासाओं परं नु कुज्जा।

आयरियपाया पुण अप्पसन्ना, अबोहि आसायण नत्थि मोक्खो ॥५॥

अन्वयार्थ- (आसीविसो) दृष्टिविष सांप (परं) अन्यन्त (सुरुट्ठो) यावि कुपित हो जाने पर भी (जीयनासाओं) प्राणानाश से (परं) अधिक (किं कुज्जा) और क्या कर सकता है? अर्थात् कुछ नहीं कर सकता किन्तु जो शिष्य (आयरियपाया) पूज्यपाद आचार्य महाराज को (अप्पसन्ना) अप्रसन्न करता है वह शिष्य (आसायण) गुरु की आशातना करने से (अबोहि) मिथ्यात्व को प्राप्त होता है जिससे (पुण) फिर (नत्थि मोक्खो) उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती ॥५॥

(सांप का काटा हुआ प्राणी एक ही बार मरता है। किन्तु आचार्य महाराज की आशातना करने वाले को बारम्बार जन्म-मरण करना पड़ता है।)

जो पावगं जलियमवक्कमिज्जा, आसीविसं वा वि हु कोवएज्जा।

जो वा विसं खायइ जीवियट्ठी, एसोवमाऽऽसायणया गुरुणं ॥६॥

अन्वयार्थ- जो अभिमानी शिष्य (गुरुणं) गुरु महाराज की (आसायणया) आशातना करता है (एसोवमा) वह उस पुरुष के समान है (जो) जो (जलियं) जलती हुई (पावगं) अग्नि को (अवक्कमिज्जा) पैरों से कुचलकर बुझाना चाहता है (वा वि) अथवा जो (आसीविसं) दृष्टिविष सर्प को (हु)

कोवएज्जा) कुपित करता है (वा) अथवा (जो) जो मूर्ख (जीवियट्टी) जीने की इच्छा से (विसं) हलाहल विष को (खायइ) खाता है ॥6॥

**सिया हु से पावय नो डहेज्जा, आसीविसो वा कुविओ न भक्खे।
सिया विसं हलाहलं न मारे, न यावि मोक्खो गुरुहीलणाए ॥७॥**

अन्वयार्थ- (सिया हु) यदि कदाचित् (से) अग्नि के ऊपर पैर रखने वाले पुरुष के पैर को (पावय) अग्नि (नो डहेज्जा) न जलावे (वा) अथवा (कुविओ) कुपित हुआ (आसीविसो) दृष्टि-विष सर्प भी (न भक्खे) न काटे (सिया) कदाचित् (हलाहलं) हलाहल नामक (विसं) तीव्र विष भी (न मारे) अपना असर न दिखावे अर्थात् खाने वाले को न मारे। यद्यपि ये सब बातें असंभव हैं तथापि विद्याबल एवं मंत्रबल से यदि कदाचित् संभव हो भी जाये किन्तु (गुरुहीलणाए) गुरु की हीलना करने वाले को (न यावि मोक्खो) कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता ॥7॥

जो पव्वयं सिरसा भेतुमिच्छे, सुत्तं व सीहं पडिबोहएज्जा।

जो वा दए सत्तिअग्गे पहारं, एसोवमाऽऽसायणया गुरुणं ॥८॥

अन्वयार्थ- जो दुर्बुद्धि शिष्य (गुरुणं) गुरु महाराज की (आसायणया) आशातना करता है (एसोवमा) वह उस पुरुष के समान है (जो) जो (पव्वयं) पर्वत को (सिरसा) मस्तक की टक्कर से (भेतुं) फोड़ना (इच्छे) चाहता है (व) अथवा (सुत्तं) सोते हुए (सीहं) सिंह को (पडिबोहएज्जा) लात मारकर जगाता है (वा) अथवा (जो) जो मूर्ख (सत्ति अग्गे) तीक्ष्ण तलवार की धार पर (पहारं दए) मुष्टि का प्रहार करता है ॥8॥

(उपरोक्त कार्य करने वाला पुरुष अपना ही अहित करता है, इसी तरह गुरु की आशातना करने वाला अविनीत शिष्य भी अपना ही अहित करता है।)

**सिया हु सीसेण गिरिं पि भिंदे, सिया हु सीहो कुविओ न भक्खे।
सिया न भिंदेज्ज व सत्तिअग्गं, न यावि मोक्खो गुरुहीलणाए ॥९॥**

अन्वयार्थ- (सिया हु) यदि कदाचित् कोई वासुदेवादि शक्तिशाली पुरुष (सीसेण) मस्तक की टक्कर से (गिरिं पि) पर्वत को भी (भिंदे) चूर-चूर कर दे (हु) अथवा (सिया) कदाचित् (कुविओ) लात मार कर जगाने से कुपित हुआ (सीहो) सिंह भी (न भक्खे) न खावे (व) अथवा

(सिया) कदाचित् (सत्तिअग्गं) तलवार की तीक्ष्ण धार पर मुष्टि प्रहार करने पर भी (न भिंदेज्ज) हाथ न कटे अर्थात् ये असंभव बातें संभव हो भी जाये किन्तु (गुरुहीलणाए) गुरु की हीलना करने वाले दुर्बुद्धि शिष्य को (न यावि मोक्खो) कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता ॥9॥

आयरियपाया पुण अप्पसन्ना, अबोहि आसायण नत्थि मोक्खो।

तम्हा अणाबाहसुहाभिकंखी, गुरुप्पसायाभिमुहो रमेज्जा ॥१०॥

अन्वयार्थ- (आयरियपाया) पूज्यपाद आचार्य महाराज की (आसायण) आशातना करके (पुण अप्पसन्ना) उन्हें अप्रसन्न करने वाले पुरुष को (अबोहि) मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है जिससे (नत्थि मोक्खो) वह मोक्ष सुख का अधिकारी नहीं हो सकता (तम्हा) इसलिए (अणाबाहसुहाभिकंखी) मोक्ष के अनाबाध सुख की चाह रखने वाला पुरुष (गुरुप्पसायाभिमुहो) गुरु महाराज को प्रसन्न करने में (रमेज्जा) सदा प्रयत्नशील रहे ॥10॥

जहाऽऽहिअग्गी जलणं नमंसे, नाणाहुईमंतपयाभिसित्तं।

एवाऽऽयरियं उवचिट्ठएज्जा, अणंतणाणोवगओ वि संतो ॥११॥

अन्वयार्थ- (जहा) जिस प्रकार (आहिअग्गी) अग्निहोत्री ब्राह्मण (नाणाहुईमंतपयाभिसित्तं) नाना प्रकार की घृतादि की आहुतियों से तथा वेदमंत्रों से संस्कार की हुई (जलणं) यज्ञ की अग्नि को (नमंसे) नमस्कार करता है (एव) उसी प्रकार (अणंतणाणोवगओ वि) अनन्त ज्ञानसंपन्न (संतो) हो जाने पर भी शिष्य को (आयरियं) आचार्य महाराज की (उवचिट्ठएज्जा) विनयपूर्वक सेवा करनी चाहिए ॥11॥

जस्संतिए धम्मपयाइं सिक्खे, तस्संतिए वेणइयं पउंजे।

सक्कारए सिरसा पंजलीओ, काय गिरा भो! मणसा य निच्चं ॥१२॥

अन्वयार्थ- (भो) गुरु महाराज शिष्य को कहते हैं कि शिष्य का यह कर्तव्य है कि (जस्संतिए) जिन गुरु महाराज के पास (धम्मपयाइं) धर्मशास्त्रों की (सिक्खे) शिक्षा प्राप्त करे (तस्संतिए) उनकी सदा (वेणइयं) विनयभक्ति (पउंजे) करे (पंजलीओ) दोनों हाथ जोड़कर (सिरसा) और मस्तक झुकाकर नमस्कार करे (य) और (काय गिरा मणसा) मन, वचन, काया से (निच्चं) सदा (सक्कारए) सत्कार करे अर्थात् गुरु के आने पर खड़े होना, उन्हें वन्दना करना, उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करना आदि कार्यो से उनका विनय करे ॥12॥

लज्जा दया संजम बंधचरं, कल्लाणभागिस्स विसोहिठाणं।

जे मे गुरू सययमणुसासयंति, ते हं गुरू सययं पूययामि ॥१३॥

अन्वयार्थ- (लज्जा) अधर्म के प्रति लज्जा-भय, (दया) दया अनुकम्पा (संजम) संयम और (बंधचरं) ब्रह्मचर्य- ये चारों (कल्लाणभागिस्स) अपनी आत्मा का हित चाहने वाले मुनि के लिए (विसोहिठाणं) विशुद्धि के स्थान हैं। इसलिए शिष्य को यह भावना रखनी चाहिए कि (जे) जो (गुरू) गुरु महाराज (मे) मुझे (सययं) सदा (अणुसासयंति) शिक्षा देते हैं (ते हं गुरू) उन गुरु महाराज की मुझे (सययं) सदा (पूययामि) विनय-भक्ति करनी चाहिए ॥१३॥

जहा निसंते तवतऽच्चिमाली, पभासई भारह केवलं तु।

एवाऽऽयरिओ सुयसीलबुद्धि, विरायई सुरमज्जे व इंदो ॥१४॥

अन्वयार्थ- (जहा) जिस प्रकार (निसंते) रात्रि व्यतीत होने पर अर्थात् प्रातःकाल (तवतऽच्चिमाली) तेज से देदीप्यमान सूर्य अपनी किरणों से (भारह केवलं तु) सम्पूर्ण भरतक्षेत्र को (पभासई) प्रकाशित करता है (एव) उसी प्रकार (आयरिओ) आचार्य महाराज (सुयसीलबुद्धि) अपने ज्ञान, चारित्र तथा तात्त्विक उपदेश द्वारा जीवादि पदार्थों को प्रकाशित करते हैं और (व) जिस प्रकार (सुरमज्जे) देवों में (इंदो) इन्द्र शोभित होता है उसी प्रकार आचार्य महाराज भी साधुओं के बीच में (विरायई) शोभित होते हैं ॥१४॥

जहा ससी कोमुइजोगजुत्ते, नक्खत्त-तारागणपरिवुडप्पा।

खे सोहई विमले अब्भमुक्के, एवं गणी सोहइ भिक्खुमज्जे ॥१५॥

अन्वयार्थ- (जहा) जिस प्रकार (नक्खत्त-तारागणपरिवुडप्पा) नक्षत्र और ताराओं के समूह से घिरा हुआ (कोमुइजोगजुत्ते) कार्तिक पूर्णमासी को उदय हुआ (ससी) चन्द्रमा (अब्भमुक्के) बादलों से रहित (विमले) अतीव निर्मल (खे) आकाश में (सोहई) शोभित होता है (एवं) इसी प्रकार (गणी) आचार्य महाराज (भिक्खुमज्जे) साधु समूह के मध्य में (सोहइ) शोभित होते हैं ॥१५॥

महागरा आयरिया महेसी, समाहिजोगाण सुयसीलबुद्धि।

संपाविउकामे अणुत्तराई, उवट्ठओ तोसएँ धम्मकामी ॥१६॥

अन्वयार्थ- (अणुत्तराई) उत्कृष्ट ज्ञानादि भावरत्नों को (संपाविउकामे)

प्राप्त करने की इच्छा वाला (धम्मकामी) श्रुतचारित्र रूप धर्म का अभिलाषी मुनि (महागरा) ज्ञानादि रत्नों के भण्डार (सुयसीलबुद्धि) श्रुत चारित्र और बुद्धि से युक्त (समाहिजोगाण) समाधिवंत (महेसी) महर्षि (आयरिया) आचार्य महाराज की (उवट्ठओ) आराधना करे और (तोसएँ) उनकी विनय-भक्ति करके उन्हें प्रसन्न रखे ॥१६॥

सोच्चाण मेहावी सुभासियाइं, सुस्सुसए आयरिएऽप्पमत्तो।

आराहइत्ताण गुणे अणेगे, से पावई सिद्धिमणुत्तरं ॥१७॥

अन्वयार्थ- (मेहावी) गुरु वचनों को यथार्थ रूप से धारण करने की बुद्धि वाला विनीत शिष्य (सुभासियाइं) तीर्थंकर भगवान् द्वारा फरमाये हुए विनयाराधना के शिक्षाप्रद वचनों को (सोच्चाण) सुनकर (अप्पमत्तो) प्रमादरहित होकर (आयरिए) आचार्य महाराज की (सुस्सुसए) सेवा-शुश्रूषा करे। इस प्रकार सेवा करने से (से) वह विनीत शिष्य (अणेगे) अनेक (गुणे) सद्गुणों को (आराहइत्ताण) प्राप्त करके (सिद्धिमणुत्तरं) उत्तम सिद्ध गति को (पावई) प्राप्त होता है ॥१७॥ (त्ति बेमि) श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि- आयुष्मन् जम्बू! मैंने जैसा भगवान् महावीर से सुना है, वैसा ही कहा है।



‘विनय समाधि’ नामक नौवें अध्ययन का चौथा उद्देशक

सुयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं-इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पण्णत्ता ॥१॥

कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पण्णत्ता? इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पण्णत्ता ॥२॥

तं जहा-विणयसमाही, सुयसमाही, तवसमाही, आचारसमाही ॥३॥

अन्वयार्थ- श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि (आउसं) हे आयुष्मान् जम्बू! (तेणं भगवया) उन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने (एवं) इस प्रकार (अक्खायं) फरमाया था वह (मे) मैंने (सुयं) सुना है। यथा (इह-खलु) जैन सिद्धान्त में (थेरेहिं) स्थविर (भगवंतेहिं) भगवन्तों ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (चत्तारि) चार प्रकार (पण्णत्ता) बतलाये हैं। शिष्य प्रश्न करता है कि हे पूज्य! (थेरेहिं भगवंतेहिं) उन स्थविर भगवन्तों ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (ते) वे (चत्तारि) चार प्रकार (कयरे) कौन से (पण्णत्ता) बतलाये हैं? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि- हे आयुष्मान् शिष्य! (थेरेहिं) उन स्थविर (भगवंतेहिं) भगवन्तों ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (इमे खलु) ये (चत्तारि) चार प्रकार (पण्णत्ता) बतलाये हैं। (तं जहा) जैसे कि :- (विणयसमाही) विनयसमाधि, (सुयसमाही) श्रुतसमाधि, (तवसमाही) तपसमाधि और (आचारसमाही) आचारसमाधि ॥१-३॥

विणए, सुए तवे य आयारे निच्च पंडिया।

अभिरामयंति अप्पाणं, जे भवंति जिइंदिया ॥४॥

अन्वयार्थ- (जे) जो (जिइंदिया) जितेन्द्रिय साधु (विणए) विनय में (सुए) श्रुत में (तवे) तप में (य) और (आयारे) आचार में (निच्च) सदा (अप्पाणं) अपनी आत्मा को (अभिरामयंति) लगाये रहते हैं (पंडिया) वे ही सच्चे पण्डित (भवन्ति) कहलाते हैं ॥४॥

चउव्विहा खलु विणयसमाही भवइ। तं जहा- अणुसासिज्जंतो सुस्सूसइ, सम्मं संपडिवज्जइ, वेयमाराहइ, न य भवइ अत्तसंपग्गहिए

चउत्थं पयं भवइ ॥५॥

अन्वयार्थ- (विणयसमाही खलु) विनयसमाधि (चउव्विहा) चार प्रकार की (भवइ) होती है (तंजहा) जैसे कि :- (अणुसासिज्जंतो) जिस गुरु से विद्या सीखी हो, उस गुरु को परमोपकारी जानकर (सुस्सूसइ) सदा सेवा-शुश्रूषा करना एवं उनकी आज्ञा को सुनने की इच्छा रखना। (सम्मं संपडिवज्जइ) गुरु की आज्ञा को सुनकर उसके अभिप्राय को अच्छी तरह समझना। (वेयमाराहइ) इसके बाद गुरु की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन करना एवं श्रुतज्ञान की आराधना करना। (न य भवइ अत्तसंपग्गहिए) अभिमान न करना एवं आत्मप्रशंसा न करना (चउत्थं) यह चौथा (पयं) भेद (भवइ) है ॥५॥

भवइ य इत्थ सिलोगो-

पेहेइ हियाणुसासणं, सुस्सूसइ तं च पुणो अहिट्ठए।

न य माणमएण मज्जई, विणयसमाहिए आययट्ठए ॥६॥

अन्वयार्थ- (य) और (इत्थ) इस विषय में (सिलोगो) एक श्लोक भी (भवइ) है। वह इस प्रकार है:-

(विणयसमाहि) विनयसमाधिपूर्वक (आययट्ठए) अपनी आत्मा का कल्याण चाहने वाला साधु (हियाणुसासणं) हितकारी शिक्षा सुनने की सदा (पेहेइ) इच्छा करने (च) और (तं) गुरु की आज्ञा को (सुस्सूसई) शिरोधार्य करे (पुणो) और फिर (अहिट्ठए) उसी के अनुसार आचरण करे (य) और विनयी होने का (न माणमएण मज्जई) अभिमान न करे ॥६॥

चउव्विहा खलु सुयसमाही भवइ, तंजहा-

‘सुयं मे भविस्सइ’ त्ति अज्झाइयव्वं भवइ,

‘एगगचित्तो भविस्सामि’ त्ति अज्झाइयव्वं भवइ,

‘अप्पाणं ठावइस्सामि’ त्ति अज्झाइयव्वं भवइ,

‘ठिओ परं ठावइस्सामि’ त्ति अज्झाइयव्वं भवइ चउत्थं पयं भवइ ॥७॥

अन्वयार्थ- (सुयसमाही) श्रुतसमाधि के (चउव्विहा) चार भेद (खलु भवइ) हैं, (तं जहा) वे इस प्रकार हैं:- (मे) अध्ययन करने से मुझे (सुयं) श्रुतज्ञान का (भविस्सइत्ति) लाभ होगा ऐसा समझकर मुनि (अज्झाइयव्वं भवइ) अध्ययन करे। अध्ययन करने से (एगगचित्तो) चित्त की एकाग्रता (भविस्सामि त्ति) होगी ऐसा समझकर मुनि (अज्झाइयव्वं भवइ) अध्ययन

करे। (अप्पाणं) मैं अपनी आत्मा को (ठावइस्सामि त्ति) धर्म में स्थिर करूंगा-ऐसा समझकर मुनि (अज्झाइयव्वं भवइ) अध्ययन करे। (ठिओ) यदि मैं अपने धर्म में स्थिर होऊंगा तो (परं) दूसरों को भी (ठावइस्सामि त्ति) धर्म में स्थिर कर सकूंगा-ऐसा समझ कर मुनि (अज्झाइयव्वं भवइ) अध्ययन करे (चउत्थं) यह अंतिम चौथा (पयं) पद (भवइ) है ॥7॥

भवइ य इत्थ सिलोगो-

नाणमेगगचित्तो य, ठिओ ठावयई परं।

सुयाणि य अहिज्जित्ता, रओ सुयसमाहिए ॥८॥

अन्वयार्थ- (य) और (इत्थ) इस विषय में (सिलोगो) एक श्लोक भी (भवइ) है। वह इस प्रकार है:-

(सुयाणि) शास्त्रों का (अहिज्जित्ता) अध्ययन करने से (नाणं) ज्ञान की प्राप्ति होती है (एगगचित्तो) चित्त की एकाग्रता होती है (ठिओ य) अपनी आत्मा को धर्म में स्थिर करता है (य) और (परं) दूसरों को भी (ठावयई) धर्म में स्थिर करता है इसलिए मुनि को सदा (सुयसमाहिए) श्रुतसमाधि में (रओ) संलग्न रहना चाहिए ॥8॥

चउव्विहा खलु तवसमाही भवइ। तं जहा-

नो इहलोगट्ठयाए तवमहिटेठज्जा,

नो परलोगट्ठयाए तवमहिटेठज्जा,

नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए तवमहिटेठज्जा,

नऽन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिटेठज्जा चउत्थं पयं भवइ ॥९॥

अन्वयार्थ- (तवसमाही) तपसमाधि के (चउव्विहा) चार भेद (खलु भवइ) हैं, (तं जहा) वे इस प्रकार हैं- (इहलोगट्ठयाए) इहलौकिक सुखों के लिए एवं किसी लब्धि आदि की प्राप्ति के लिए (तवं) तपस्या (नो अहिटेठज्जा) न करे। (परलोगट्ठयाए) पारलौकिक सुखों के लिए (तवं) तपस्या (नो अहिटेठज्जा) न करे। (कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए) कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लाघा के लिए भी (तवं) तपस्या (नो अहिटेठज्जा) न करे। (अन्नत्थनिज्जरट्ठयाए) कर्म निर्जरा के अतिरिक्त और किसी भी कार्य के लिए (तवं) तपस्या (नो अहिटेठज्जा) न करे (चउत्थं) यह अंतिम चतुर्थ (पयं) पद (भवइ) है ॥9॥

भवइ य इत्थ सिलोगो-

विविहगुणतवोरए य निच्चं, भवइ निरासए निज्जरट्ठिए।

तवसा धुणइ पुराणपावगं, जुत्तो सया तवसमाहिए ॥१०॥

अन्वयार्थ- (य) और (इत्थ) इस विषय में (सिलोगो) एक श्लोक भी है। वह इस प्रकार है-

मोक्षाभिलाषी मुनि को चाहिए कि वह (सया) सदा (तवसमाहिए) तपसमाधि में (जुत्तो) संलग्न रहे तथा (निच्चं) निरन्तर (विविहगुणतवोरए) विविध गुणयुक्त तप में रत रहता हुआ वह मुनि (निरासए) इहलौकिक और पारलौकिक सुखों के लिए आशा न रखे किन्तु (निज्जरट्ठिए) केवल कर्मनिर्जरा के लिए तप करे (तवसा) इस प्रकार के तप से वह (पुराणपावगं) पूर्वसंचित पापकर्मों को (धुणइ) नष्ट कर डालता है ॥10॥

चउव्विहा खलु आचारसमाही भवइ। तं जहा-

नो इहलोगट्ठयाए आचारमहिटेठज्जा,

नो परलोगट्ठयाए आचारमहिटेठज्जा,

नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए आचारमहिटेठज्जा,

नऽन्नत्थ अरिहंतेहिं हेऊहिं आचारमहिटेठज्जा चउत्थं पयं भवइ ॥११॥

अन्वयार्थ- (आचारसमाही) आचारसमाधि के (चउव्विहा) चार भेद (खलु भवइ) हैं, (तं जहा) वे इस प्रकार हैं- (इहलोगट्ठयाए) इहलौकिक सुखों के लिए एवं किसी लब्धि आदि की प्राप्ति के लिए (आचार) आचार का पालन (नो अहिटेठज्जा) न करे। (परलोगट्ठयाए) पारलौकिक सुखों के लिए (आचार) आचार का पालन (नो अहिटेठज्जा) न करे। (कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए) कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लाघा के लिए भी (आचार) आचार का पालन (नो अहिटेठज्जा) न करे। (अरिहंतेहिं हेऊहिं अन्नत्थ) जैन सिद्धान्त में कहे हुए कारणों के अतिरिक्त किसी के लिए भी (आचार) आचार का पालन (नो अहिटेठज्जा) न करे किन्तु आते हुए आश्रवों के निरोध के लिए आचार का पालन करे क्योंकि किसी प्रकार की आशा न रखकर आचार का पालन करने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है-(चउत्थं) यह अंतिम चतुर्थ (पयं) पद (भवइ) है ॥11॥

भवइ य इत्थ सिलोगो-

जिणवयणरए अतिंतिणे, पडिपुण्णययमाययट्ठए।

आयारसमाहिसंवुडे, भवइ य दंते भावसंधए ॥१२॥

अन्वयार्थ- (य) और (इत्थ) इस विषय में (सिलोगो) एक श्लोक भी (भवइ) है। वह इस प्रकार है-

(जिणवयणरए) जिन-वचनों पर अटल श्रद्धा रखने वाला (अतिंतिणे) कठोर वचन न बोलने वाला (पडिपुण्ण) शास्त्रों के तत्त्वों को भली-भांति जानने वाला (अययं) निरन्तर (आययट्ठए) मोक्ष की अभिलाषा रखने वाला (दंते) इन्द्रियों का दमन करने वाला (य) और (आयारसमाहिसंवुडे) आचारसमाधि द्वारा आश्रवों का निरोध करने वाला मुनि (भावसंधए भवइ) शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥12॥

अभिगयचउरोसमाहिओ, सुविसुद्धो सुसमाहियप्पओ।

विउलहियसुहावहं पुणो, कुव्वइ य सो पयखेममप्पणो ॥१३॥

अन्वयार्थ- (सुविसुद्धो) निर्मल चित्त वाला (सुसमाहियप्पओ) अपनी आत्मा को संयम में स्थिर रखने वाला (सो) मुनि (चउरो) चारों प्रकार की (समाहिओ) समाधिओं के स्वरूप को (अभिगय) जानकर (अप्पणो) अपनी आत्मा के लिए (विउलहिय) पूर्ण हितकारी (य) और (सुहावहं) सुखकारी (पुणो) एवं (खेमं) कल्याणकारी (पय) निर्वाण पद को (कुव्वइ) प्राप्त करता है ॥13॥

जाई-मरणाओ मुच्चई, इत्थं च जहाति सव्वसो।

सिद्धे वा भवइ सासए, देवे वा अप्परए महिड्ढिणए ॥१४॥ त्ति बेमि॥

अन्वयार्थ- उपरोक्त गुणों को धारण करने वाला मुनि (इत्थं-इत्थत्थं) नरकादि पर्यायों का (सव्वसो) सर्वथा (जहाति) त्याग कर देता है अर्थात् नरकादि गतियों में नहीं जाता (य) किन्तु वह (जाई-मरणाओ) जन्म-मरण के चक्कर से (मुच्चई) छूट जाता है (वा) तथा (सासए) शाश्वत (सिद्धे) सिद्ध (भवइ) हो जाता है (वा) अथवा (अप्परए) यदि कुछ कर्म शेष रह जाते हैं तो अल्प काम-विकार वाला- उत्तम कोटि का (महिड्ढिणए) महान् ऋद्धिसंपन्न (देवे) अनुत्तर विमानवासी देव होता है ॥14॥ (त्ति बेमि) श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि-हे आयुष्मन् जम्बू! मैंने जैसा भगवान महावीर से सुना है, वैसा ही कहा है।



श्री उत्तराध्ययन सूत्र १६वां अध्ययन

॥ सोलसमं बंभचेरसमाहिठाणं अज्झयणं ॥

१. सुयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं-इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेर-समाहि-ठाणा पन्नत्ता, जे भिक्खू सोच्चा निसम्म संजम-बहुले, संवर-बहुले, समाहि-बहुले, गुते गुत्तिदिए, गुत्तबंभयारी सया अप्पमते विहरेज्जा।

(1) आयुष्मन्! मैंने सुना है कि भगवान ने ऐसा कहा है- स्थविर भगवन्तों ने निर्ग्रन्थप्रवचन में (या इस क्षेत्र में) दस ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान बतलाए हैं, जिन्हें सुनकर, जिनको अर्थरूप से निश्चित करके, भिक्षु संयम, संवर (आश्रवद्वारों का निरोध) तथा समाधि (चित्त की स्वस्थता) से उत्तरोत्तर अधिकाधिक अभ्यस्त हों; मन-वचन-काया-गुप्तियों से गुप्त रहे, इन्द्रियों को उनके विषयों में प्रवृत्त होने से बचाए, ब्रह्मचर्य को गुप्तियों के माध्यम से सुरक्षित रखे और सदा अप्रमत्त होकर विहार करे।

२. कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता, जे भिक्खू सोच्चा निसम्म संजम-बहुले, संवर-बहुले, समाहि-बहुले, गुते, गुत्तिदिए, गुत्तबंभयारी सया अप्पमते विहरेज्जा?

(2) स्थविर भगवन्तों ने ब्रह्मचर्यसमाधि के वे कौन-से दस स्थान बतलाए हैं, जिन्हें सुनकर, जिनका अर्थतः निश्चय करके, भिक्षुसंयम, संवर तथा समाधि से उत्तरोत्तर अधिकाधिक अभ्यस्त हो, मन-वचन-काया की गुप्तियों से गुप्त रहे, इन्द्रियों को उनके विषयों में प्रवृत्त होने से बचाए, ब्रह्मचर्य को गुप्तियों के माध्यम से सुरक्षित रखे और सदा अप्रमत्त होकर विहार करे?

प्रथम ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान

३. इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता, जे भिक्खू सोच्चा निसम्म संजम-बहुले, संवर-बहुले, समाहि-बहुले, गुते, गुत्तिदिए, गुत्तबंभयारी सया अप्पमते विहरेज्जा। तं जहा-विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ से निगंथे। नो इत्थि-पसु-पंडग-संसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ से निगंथे।

तं कहमिति चे? आयरियाह-निगंथस्स खलु इत्थि-पसु-पंडग-संसत्ताइं

सयणासणाइं सेवमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेजा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणेज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवल्लिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा नो इत्थि-पसु- पंडग-संसत्ताइं सयणा-सणाइं सेवित्ता हवइ से निग्गंथे।।1।।

(3) स्थविर भगवन्तो ने ब्रह्मचर्य-समाधि के ये दस समाधिस्थान बतलाए हैं, जिन्हें सुनकर, जिनका अर्थतः निश्चय करके भिक्षु संयम, संवर तथा समाधि से उत्तरोत्तर अधिकाधिक अभ्यस्त हो, मन-वचन-काया की गुप्तियों से गुप्त रहे, इन्द्रियों को उनके विषयों में प्रवृत्त होने से बचाए, ब्रह्मचर्य को नौ गुप्तियों के माध्यम से सुरक्षित रखे और सदा अप्रमत्त होकर विहार करे।

(उन दस समाधिस्थानों में से) प्रथम समाधिस्थान इस प्रकार है—जो विविक्त-एकान्त शयन और आसन का सेवन करता है वह निर्ग्रन्थ है। (अर्थात्) जो स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त (आकीर्ण) शयन और आसन का सेवन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

(प्र.) ऐसा क्यों?

(उ.) ऐसा पूछने का आचार्य कहते हैं—जो स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त शयन और आसन का सेवन करता है, उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, अथवा उसके ब्रह्मचर्य (संयम) का विनाश हो जाता है, अथवा उन्माद पैदा हो जाता है, या कोई दीर्घकालिक (लम्बे समय का) रोग और आतंक हो जाता है, अथवा वह केवल-प्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए स्त्री-पशु-नपुंसक से संशक्त शयन और आसन का जो साधु सेवन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है, (ऐसा कहा गया)।

द्वितीय ब्रह्मचर्य-समाधिस्थान

४. नो इत्थीणं कंहे कहेत्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु इत्थीणं कंहे कहेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेजा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवल्लिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा नो इत्थीणं कंहे कहेज्जा।।2।।

(4) जो स्त्रियों की कथा नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

(प्र.) ऐसा क्यों?

(उ.) ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—जो साधु स्त्रियों सम्बन्धी कथा करता है, उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, अथवा ब्रह्मचर्य का नाश होता है, अथवा उन्माद पैदा होता है, या दीर्घकालिक योग और आतंक हो जाता है, अथवा वह केवल प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ स्त्री सम्बन्धी कथा न करे।

तृतीय ब्रह्मचर्य-समाधिस्थान

५. नो इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरेत्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जा-गयस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेजा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवल्लि-पन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो निग्गंथे इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरेज्जा।।3।।

(5) जो स्त्रियों के साथ एक आसन पर नहीं बैठता, वह निर्ग्रन्थ है।

(प्र.) ऐसा क्यों?

(उ.) आचार्य कहते हैं— जो ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ स्त्रियों के साथ एक आसन पर बैठता है, उसको ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश हो जाता है अथवा उन्माद पैदा हो जाता है या दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है; अथवा वह केवल प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे।

चतुर्थ ब्रह्मचर्य-समाधिस्थान

६. नो इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता निज्झाइत्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोयमाणस्स निज्झायमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेजा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा

पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलि-पन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो निग्गंथे इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोएज्जा निज्जाएज्जा॥४॥

(6) जो स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों को (ताक-ताक कर) नहीं देखता, उनके विषय में चिन्तन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ श्रमण है।

(प्र.) ऐसा क्यों?

(उ.) इस पर आचार्य कहते हैं—जो निर्ग्रन्थ ब्रह्मचारी स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों को (ताक-ताक कर या दृष्टि गड़ाकर) देखता है और उनके विषय में चिन्तन करता है, उसके ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का भंग हो जाता है अथवा उन्माद पैदा हो जाता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है या वह केवलि-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए निर्ग्रन्थ स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों को न देखे और न ही उनका चिंतन करे।

पंचम ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान

७. नो इत्थीणं कुड्डंतरंसि वा दूसंतरंसि वा, भित्तिअंतरंसि वा कूइयसदं वा रुइयसदं वा गीयसदं वा हसियसदं वा थणियसदं वा कंदियसदं वा विलवियसदं वा सुणेत्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु इत्थीणं कुड्डंतरंसि वा, दूसंतरंसि वा भित्तिअंतरंसि वा कूइयसदं वा रुइयसदं वा गीयसदं वा हसियसदं वा थणियसदं वा कंदियसदं वा विलवियसदं वा सुणमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो निग्गंथे इत्थीणं कुड्डंतरंसि वा दूसंतरंसि वा भित्तिअंतरंसि वा कूइयसदं वा रुइयसदं वा गीयसदं वा हसियसदं वा थणियसदं वा कंदियसदं वा विलवियसदं वा सुणमाणे विहरेज्जा॥५॥

(7) जो मिट्टी की दीवार के अन्तर से, कपड़े के पर्दे के अन्तर से, अथवा पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजितशब्द को, रुदितशब्द को, गीत की ध्वनि को, हास्यशब्द को, स्तनित (गर्जन-से) शब्द को,

आक्रन्दन अथवा विलाप के शब्द को नहीं सुनता, वह निर्ग्रन्थ है।

(प्र.) ऐसा क्यों?

(उ.) ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—जो निर्ग्रन्थ मिट्टी की दीवार के अन्तर से, पर्दे के अन्तर से, अथवा पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रुदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन अथवा विलाप के शब्दों को सुनता है, उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, अथवा उसका ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है अथवा उन्माद पैदा हो जाता है, अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है, या वह केवलि-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ मिट्टी की दीवार के अन्तर से, पर्दे के अन्तर से, अथवा पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रुदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्द को न सुने।

छठा ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान

८. नो निग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरित्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो निग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरेज्जा॥६॥

(8) जो साधु (संयमग्रहण से) पूर्व (गृहस्थावस्था में स्त्री आदि के साथ किये गए) रमण का और पूर्व (गृहवास में स्त्री आदि के साथ की गई) क्रीड़ा का अनुस्मरण नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

(प्र.) ऐसा क्यों?

(उ.) इसके उत्तर में आचार्य कहते हैं— जो पूर्व (गृहवास में की गई) रति और क्रीड़ा का अनुस्मरण करता है, उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश हो जाता है, अथवा उन्माद पैदा होता है, अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है, या वह केवलि-प्रज्ञप्त धर्म से

भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ (संयमग्रहण से) पूर्व (गृहवास में) की (गई) रति और अनुस्मरण न करे।

सातवाँ ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान

१. नो पणीयं आहारं आहारित्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु पणीयं आहारं आहारेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवल्लिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो निग्गंथे पणीयं आहारं आहारेज्जा।।7।।

(1) जो प्रणीत-रसयुक्त पौष्टिक आहार नहीं करता वह निर्ग्रन्थ है।

(प्र.) ऐसा क्यों?

(उ.) इस पर आचार्य कहते हैं- जो रसयुक्त पौष्टिक भोजन-पान करता है, उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा और विचिकित्सा उत्पन्न होती है, अथवा उसके ब्रह्मचर्य का भंग हो जाता है, अथवा उन्माद पैदा हो जाता है, अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है, अथवा वह केवल्लिप्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

इसलिए निर्ग्रन्थ प्रणीत-सरस एवं पौष्टिक आहार न करे।

आठवाँ ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान

१०. नो अइमायाए पाणभोयणं आहारित्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु अइमायाए पाणभोयणं आहारेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवल्लिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो निग्गंथे अइमायाए पाणभोयणं आहारेज्जा।।8।।

(10) जो अतिमात्र में (परिणाम से अधिक) पान-भोजन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

(प्र.) ऐसा क्यों?

(उ.) उत्तर में आचार्य कहते हैं- जो परिमाण से अधिक खाता-पीता है, उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा अथवा विचिकित्सा उत्पन्न होती है, या ब्रह्मचर्य का विनाश हो जाता है, अथवा उन्माद पैदा हो जाता है, अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है, अथवा वह केवल्लि-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ मात्रा से अधिक पान-भोजन का सेवन न करे।

नौवाँ ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान

११. नो विभूसाणुवादी हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु विभूसावत्तिए विभूसिय-सरीरे इत्थि-जणस्स अभिलसणिज्जे हवइ। तओ णं तस्स इत्थि-जणेणं अभिलसिज्जमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवल्लिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो निग्गंथे विभूसाणुवादी हवेज्जा।।9।।

(11) जो विभूषा नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

(प्र.) ऐसा क्यों?

(उ.) इस प्रकार पूछने पर आचार्य कहते हैं- जिसकी मनोवृत्ति विभूषा करने की होती है, जो शरीर को विभूषित (सुसज्जित) किये रहता है, वह स्त्रियों की अभिलाषा का पात्र बन जाता है। इसके पश्चात् स्त्रियों द्वारा चाहे जाने वाले ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य में शंका, कांक्षा अथवा विचिकित्सा उत्पन्न हो जाती है, अथवा ब्रह्मचर्य भंग हो जाता है, अथवा उसे उन्माद पैदा हो जाता है, या उसे दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है, अथवा वह केवल्लि-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ विभूषानुपाती न बने।

दसवाँ ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान

१२. नो सह-रूव-रस-गंध-फासाणुवादी हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-निग्गंथस्स खलु सह-रूव-रस- गंध-फासाणुवाइस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवल्लिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो सह-रूव-रस- गंध-फासाणुवादी हवेज्जा

से निगमंथे। दसमे बंभचेरसमाहिठाणे हवइ। भवंति य इत्थ सिलोगा। तं जहा-

(12) जो साधक शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में आसक्त नहीं होता, वह निर्ग्रन्थ है।

(प्र.) ऐसा क्यों?

(उ.) उत्तर में आचार्य कहते हैं- शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श में आसक्त होने वाले ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न हो जाती है अथवा ब्रह्मचर्य भंग हो जाता है, अथवा उसे उन्माद पैदा हो जाता है या फिर दीर्घकालिक रोग या आतंक हो जाता है, अथवा वह केवलिभाषित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए निर्ग्रन्थ शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में अनुपाती (-आसक्त) न बने। यह ब्रह्मचर्यसमाधि का दसवाँ स्थान है।

इस विषय में यहाँ कुछ श्लोक हैं, जैसे-

पूर्वोक्त दस समाधिस्थानों का पद्य रूप में विवरण

1. जं विवित्त-मणाइण्णं, रहियं इत्थि-जणेण य।
बंभचेरस्स रक्खट्ठा, आलयं तु निसेवए॥1॥

(1) निर्ग्रन्थ साधु ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए ऐसे स्थान (आलय) में रहें, जो विवित्त (एकान्त) हो, अनाकीर्ण-(स्त्री आदि से अव्याप्त) हो और स्त्रीजन से रहित हो।

2. मण-पल्हाय-जणणिं, काम-राग-विवड्डणिं।
बंभचेररओ भिक्खू, थीकहं तु विवज्जए॥2॥

(2) ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु मन में आह्लाद उत्पन्न करने वाली और कामराग बढ़ाने वाली स्त्रीकथा का त्याग करे।

3. समं च संथवं थीहिं, संकहं च अभिक्खणं।
बंभचेर-रओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए॥3॥

(3) ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु स्त्रियों के साथ संस्तव (संसर्ग या अतिपरिचय) और बार-बार वार्तालाप (संकथा) का सदैव त्याग करे।

4. अंग-पच्चंग-संठाणं, चारु-ल्लविय-पेहियं।
बंभचेर-रओ थीणं, चक्खुगेज्झं विवज्जए॥4॥

(4) ब्रह्मचर्यपरायण साधु नेत्रेन्द्रिय से ग्राह्य स्त्रियों के अंग-प्रत्यंग, संस्थान (आकृति, डीलडौल या शरीर रचना), बोलने की सुन्दर छटा (या मुद्रा) तथा कटाक्ष को देखने का परित्याग करे।

5. कूहयं रुइयं गीयं, हसियं थणिय वंदियं।
बंभचेर-रओ थीणं, सोय-गेज्झं विवज्जए॥5॥

(5) ब्रह्मचर्य में रत साधु श्रोत्रेन्द्रिय से ग्राह्य स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन और क्रन्दन न सुने।

6. हासं किड्डुं रइं दप्पं, सहसाऽवत्तासियाणि य।
बंभचेर-रओ थीणं, नाणुचिते कयाइ वि॥6॥

(6) ब्रह्मचर्य-निष्ठ साधु दीक्षाग्रहण से पूर्व जीवन में स्त्रियों के साथ अनुभूत हास्य, क्रीड़ा, रति, दर्प (कन्दर्प या मान) और साथ किए भोजन एवं बैठने का कदापि चिन्तन न करे।

7. पणीयं भत्त-पाणं तु, ख्विप्पं मय-विवड्डणं।
बंभचेर-रओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए॥7॥

(7) ब्रह्मचर्य-रत भिक्षु शीघ्र ही कामवासना को बढ़ाने वाले प्रणीत भोजन-पान का सदैव त्याग करे।

8. धम्म-लद्धं मियं काले, जत्तत्थं पणिहाणवं।
नाइ-मत्तं तु भुंजेज्जा, बंभचेर-रओ सया॥8॥

(8) ब्रह्मचर्य में लीन रहने वाला, चित्त-समाधि से सम्पन्न साधु संयमयात्रा (या जीवन-निर्वाह) के लिए उचित (शास्त्र-विहित) समय में धर्म (मुनिधर्म की मर्यादानुसार) उपलब्ध परिमित भोजन करे, किन्तु मात्रा से अधिक भोजन न करे।

9. विभूसं परिवज्जेज्जा, सरीर-परिमंडणं।
बंभचेर-रओ भिक्खू, सिंगारत्थं न धारए॥9॥

(9) ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु विभूषा का त्याग करे, श्रृंगार के लिए शरीर का मण्डन (प्रसाधन) न करे।

10. सद्दे रूवे य गंधे य, रसे फासे तहेव य।
पंचविहे कामगुणे, निच्चसो परिवज्जए॥10॥

(10) वह शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श- इन पांच प्रकार के

2. गर्भ का थोकड़ा

श्रीमद् भगवती सूत्र पहले शतक के सातवें उद्देशक के आधार से गर्भ का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं :-

1. भंते! क्या महान ऋद्धि, कान्ति, बल, यश, सुख और महानुभाव वाला देव अपना च्यवन काल (मृत्यु समय) नजदीक जानकर लज्जा के कारण, घृणा के कारण, परीषह (अरति आदि) के कारण थोड़े समय तक आहार नहीं लेता, फिर पीछे क्षुधा (भूख) सहन नहीं होने से आहार करता है, शेष आयु पूरी होने पर मनुष्य गति या तिर्यञ्च गति में उत्पन्न होता है?

हाँ गौतम! देवता अपना च्यवन काल नजदीक जानकर चिन्ता करता है कि अब मुझे इन देव संबंधी काम भोगों को छोड़कर मनुष्यादि की अशुचि पदार्थ वाली योनि में उत्पन्न होना पड़ेगा और वहाँ वीर्य और रूधिर का आहार लेना पड़ेगा। ऐसा सोचकर वह लज्जा के कारण यावत् मनुष्य गति या तिर्यञ्च गति में उत्पन्न होता है।

2. भंते! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव इन्द्रिय सहित उत्पन्न होता है या इन्द्रिय रहित उत्पन्न होता है?

गौतम! द्रव्येन्द्रियों (कान, आँख, नाक, जीभ और स्पर्श) की अपेक्षा इन्द्रिय रहित उत्पन्न होता है क्योंकि द्रव्येन्द्रियाँ शरीर से सम्बन्ध रखती हैं और भावेन्द्रियों की अपेक्षा इन्द्रियों सहित उत्पन्न होता है।

3. भंते! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव क्या सशरीरी (शरीर सहित) उत्पन्न होता है या अशरीरी (शरीर रहित) उत्पन्न होता है?

गौतम! औदारिक, वैक्रिय, आहारक इन तीन शरीरों की अपेक्षा शरीर रहित उत्पन्न होता है क्योंकि ये तीनों शरीर जीव के उत्पन्न होने के बाद उत्पन्न होते हैं। तैजस शरीर और कार्मण शरीर की अपेक्षा शरीर सहित उत्पन्न होता है क्योंकि ये दोनों शरीर परभव में जीव के साथ रहते हैं, इनका जीव के साथ अनादि संबंध है।

4. भंते! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव सर्वप्रथम क्या आहार लेता है?

गौतम! सर्वप्रथम माता के रूधिर और पिता के वीर्य का मिश्रित आहार लेता है। फिर माता जैसा आहार करती है उसका एक देश (भाग, अंश) आहार गर्भ में रहा हुआ जीव भी करता है, क्योंकि माता की नाड़ी का गर्भस्थ जीव की नाड़ी से संबंध है।

5. भंते! क्या गर्भ में रहे हुए जीव के मल-मूत्र, श्लेष्म (बलगम), नाक का मैल, वमन और पित्त होते हैं?

गौतम! गर्भ में रहे हुए जीव के मल-मूत्र, श्लेष्म, नाक का मैल, वमन और पित्त नहीं होते हैं क्योंकि गर्भस्थ जीव जो आहार करता है वह श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय रूप में तथा हाड, मज्जा (हाड की मीजी), केश, नख रूप में परिणमाता है।

भंते! क्या गर्भस्थ जीव मुख से कवलाहार कर सकता है?

गौतम! गर्भस्थ जीव मुख से कवलाहार नहीं कर सकता है, वह सर्व आत्म प्रदेशों से आहार करता है, सर्व आत्म प्रदेशों से परिणमाता है, सर्व आत्म-प्रदेशों से उच्छ्वास लेता है निःश्वास छोड़ता है यावत् कदाचित् उच्छ्वास लेता है निःश्वास छोड़ता है।

6. भंते! जीव के माता के कितने अंग हैं और पिता के कितने अंग हैं?

गौतम! 1. मांस, 2. रूधिर, (लोही) और 3. मस्तक का भेजा- ये तीन अंग माता के हैं और 1. हाड 2. मज्जा (हाड की मीजी) और 3. केश, दाढ़ी, रोम, नख- ये तीन अंग पिता के हैं।

7. भंते! माता-पिता के अंग सन्तान के शरीर में कितने काल तक रहते हैं?

गौतम! जब तक जीव का भवधारणीय शरीर रहता है तब तक माता-पिता के अंग रहते हैं, परन्तु प्रतिसमय वे क्षीण होते जाते हैं यावत् आयुष्य समाप्त होने तक उनका कुछ न कुछ अंश रहता ही है। इसलिए इस पर माता-पिता का बहुत बड़ा उपकार है, इसी से यह जीवित है, इसलिए माता-पिता के उपकार को कभी नहीं भूलना चाहिए।

8. भंते! गर्भ में मरा हुआ जीव क्या नैरयिकों में उत्पन्न हो सकता है?

हाँ गौतम! कोई जीव नैरयिकों में उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता।

9. भंते! गर्भ में मरा हुआ जीव किस कारण से नैरयिकों में उत्पन्न होता है?

गौतम! गर्भ में मरा हुआ संज्ञी पंचेन्द्रिय पूर्ण पर्याप्ति वाला वीर्यलब्धि वैक्रियलब्धि वाला जीव किसी समय चढ़ाई कर आये हुए शत्रु सेना के विषय में सुनकर वैक्रिय लब्धि से अपने आत्म-प्रदेशों को गर्भ से बाहर निकालता है और वैक्रिय समुद्घात करके चतुरंगिणी सेना तैयार करके शत्रु से संग्राम करता है। संग्राम करता हुआ वह जीव आयुष्य पूर्ण कर काल करे तो मरकर नैरयिकों में उत्पन्न होता है क्योंकि उस समय वह जीव राज्य, धन, कामभोगादि का अभिलाषी होता है। अतः

मरकर नैरयिकों** में उत्पन्न होता है।

10. भंते! क्या गर्भ में रहा हुआ जीव देवों में उत्पन्न हो सकता है?

हाँ गौतम! कोई जीव देवों में उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता।

11. भंते! गर्भ में रहा हुआ जीव मरकर किस कारण से देवों में उत्पन्न होता है।

गौतम! गर्भ में रहा हुआ संज्ञी पंचेन्द्रिय पूर्ण पर्याप्ति वाला जीव तथारूप श्रमण माहन के पास एक भी आर्य वचन (धर्म वचन) सुनकर परम संवेग की श्रद्धा और धर्म पर तीव्र प्रेम होने से धर्म, पुण्य, स्वर्ग, मोक्ष का अभिलाषी, शुद्ध चित्त, मन, लेश्या अध्यवसाय में काल करे तो वह गर्भस्थ जीव मरकर स्वर्ग में उत्पन्न होता है।

12. भंते! गर्भ में जीव क्या समचित्त रहता है या पसवाड़े से रहता है या आम्र कुब्ज (मुड़ा हुआ आम) रहता है या खड़े रहता है या बैठता है या सोता है तथा जब माता सोती है तो गर्भ का जीव भी सोता है जब माता जागती है तो गर्भ का जीव भी जागता है। माता सुखी रहे तो गर्भ का जीव भी सुखी रहता है और माता दुःखी रहे तो गर्भ का जीव भी दुःखी रहता है?

हाँ गौतम! जीव गर्भ में समचित्त रहता है यावत् गर्भ का जीव भी दुःखी रहता है। प्रसव के समय मस्तक से या पैरों से गर्भ बाहर आता है तो वह सुख पूर्वक आता है। यदि प्रसव के समय योनि द्वार पर टेढ़ा होकर आता है तो मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। गर्भ से बाहर निकले हुए जीव के कदाचित् अशुभ कर्म का उदय हो तो दुर्वर्ण, दुर्गन्ध, दुःरस, दुःस्पर्श वाला और अनिष्ट, अकान्त, अमनोज्ञ, हीनस्वर, दीनस्वर, यावत् अनादेय वचन वाला और महान दुःख में जीवन व्यतीत करने वाला होता है। जिस जीव के शुभ कर्म का उदय हो तो वह इष्ट, प्रिय, वल्लभ, सुस्वर वाला यावत् आदेय वचन वाला होता है और परमसुख में जीवन व्यतीत करने वाला होता है। इसलिए शास्त्रकार फरमाते हैं कि जीव को सुकृत करना चाहिए जिससे तीर्थकर भगवान की आज्ञा का आराधन करके क्रमशः मोक्ष के अक्षय सुखों को प्राप्त करे। फिर जन्म, जरा, मरण के दुःखों से व्याप्त इस संसार में आना ही न पड़े, जन्म लेना ही न पड़े और गर्भ के दुःखों को देखना ही न पड़े।

धर्म करो रे जीवड़ा, धर्म कियां सुख होय

धर्म करतां जीवड़ा, दुखिया न दीठा कोय।।

** १२. २. १. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

श्रीमद् भगवती सूत्र के दूसरे शतक के पाँचवें उद्देशक में कहा है-

13. भंते! गर्भ की स्थिति कितनी है?

गौतम! उदक (पानी) गर्भ की स्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट 6 मास की। तिर्यञ्चणी के गर्भ की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट 8 वर्ष की। मनुष्यणी के गर्भ की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट 12 वर्ष की।

भंते! काय भवस्थ (माता के उदर में रहे अपने शरीर में स्थित जीव) की स्थिति कितनी है?

गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट 24** वर्ष की है।

14. भंते! वीर्य कितने काल तक योनिभूत रहता है?

गौतम! तिर्यञ्चणी की योनि में प्रविष्ट हुआ तिर्यञ्च का वीर्य और मनुष्यणी की योनि में प्रविष्ट हुआ पुरुष का वीर्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट 12 मुहूर्त तक योनिभूत रहता है, फिर विनष्ट हो जाता है।

15. भंते! एक भव में एक जीव के कितने पिता हो सकते हैं?

गौतम! जघन्य 1-2-3, उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ पिता हो सकते हैं।

16. भंते! एक भव की अपेक्षा एक जीव (स्त्री) के कितने पुत्र-पुत्री हो सकते हैं?

गौतम! जघन्य 1-2-3, उत्कृष्ट पृथक्त्व लाख पुत्र-पुत्री हो सकते हैं।

17. भंते! मैथुन का कैसा असंयम है?

गौतम! जैसे कोई पुरुष भूंगली, नाल में भरी हुई रूई को गर्म लोह की सलाई डाल कर जला दे, मैथुन सेवन करने वाले को उसी प्रकार का असंयम होता है। तंदुलवेयालय प्रकीर्णक से :-

18. भंते! पुत्र-पुत्री कैसे उत्पन्न होते हैं?

गौतम! माता की दक्षिण (दाहिनी) कुक्षि में पुत्र उत्पन्न होता है और बाईं कुक्षि में पुत्री उत्पन्न होती है, बीच में नपुंसक उत्पन्न होता है। ओज (रूधिर) अल्प और वीर्य ज्यादा हो तो पुत्र उत्पन्न होता है। ओज (रूधिर) ज्यादा और वीर्य थोड़ा हो तो पुत्री उत्पन्न होती है। ओज (रूधिर) और वीर्य बराबर हो तो नपुंसक उत्पन्न होता है। यदि स्त्री स्त्री का सेवन करे तो बिम्ब होता है।

** १३. १. २. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

1. आत्मबली और दृढधर्मी महासती श्री रंगूकंवरजी म.सा.

आध्यात्म विकास की भूमिका के हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ नारी जगत भी आगे रहा है। प्रभु निर्वाण के बाद जब-जब श्रमण संस्कृति में शिथिलाचार एवं बाह्याडम्बर ने जोर जमाया, तब-तब श्रमणों ने क्रियोद्धार करके उसको दूर हटाने की चेष्टा की उसमें साध्वी समुदाय का भी बहुत योगदान रहा। उसी कड़ी में वैराग्य मूर्ति प्रथम प्रवर्तिनी श्री रंगूकंवर जी महासतीवर्या कठोर चारित्र वाली हुई। (प्रवर्तिनी का अर्थ है-साध्वियों को विभिन्न संयमी कार्यों में प्रवृत्त कराने वाली)। व्यवहार में पदवी सम्मान की वस्तु मानी जा सकती है पर धार्मिक क्षेत्र में वह उत्तरदायित्व स्वरूप है। महासतीवर्या ने अपने कर्तव्य का निःस्वार्थ भाव से पालन किया। वे स्वयं निःस्पृह थी, उनमें आत्मकल्याण की ही भावना मुख्य थी।

परिचय:-

एक समय आचार्य श्री हुक्मीचंद जी म.सा. क्रियोद्धार का सिंहनाद गुंजित करते हुए नीमच पधारे। उसी समय की एक घटना है, नीमच के हजारीमल पोरवाल छोटे साजनात परिवार की सुपुत्री रंगूजी जिनका ससुराल धम्मोत्तर गांव में था लेकिन कुछ समय बाद ही उनके ऊपर बाल वैधव्यता का पहाड़ टूट पड़ा, साथ ही कुछ समय पश्चात् पुत्र वियोग से दुःखित होकर उनके सास-ससुर भी चल बसे। अब तो केवल सब तरफ से निःसहाय एकमात्र रंगूजी ही उस परिवार में रह गई, फिर भी उन्होंने अपनी अपूर्व धैर्यता का परिचय दिया। धर्मारोधन में रमण करती हुई रंगूबाई जीवन-यापन करने लगी। उनकी शारीरिक रूप संपन्नता अनुपम थी साथ ही शुद्धशीलरत्न की आराधना से वह द्विगुणित चमक रही थी। न तृप्ति न तृष्टि, दीप की ज्योति को देखकर पतंगे जैसे मंडराने लगते हैं, उसी प्रकार वहाँ के ठाकुर शेरसिंह की दृष्टि रंगूजी पर पड़ गई। रंगूजी को देखते ही वह कामज्वर से पीड़ित हो उठा और अपनी वासना की पूर्ति के हथकंडे अपनाने लगा। कामी व्यक्ति को कभी भी इन्द्रिय सुख में तृप्ति नहीं मिलती।

ठाकुर का खाना-पीना, नींद सब हराम होने लगा। रात-दिन यही चिंतन जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग-10

करता कि किस प्रकार उसको अपने चंगुल में फँसाऊँ, आखिर सोचते-सोचते युक्ति निकाल ली। उसने सोचा-पहली बात तो यहाँ इसका है कौन? और होगा भी तो मैं यहाँ का ठाकुर हूँ। मेरा सामना करने की ताकत किसमें है? जो टकरायेगा उसको मिट्टी में मिलाना मेरे बाएं हाथ का खेल है। बस फिर क्या था? सत्ता के मद में उन्मत्त होकर कुछ सिपाहियों को उसके घर के चारों ओर घेरा डालकर येन-केन प्रकारेण उसको अपने गढ़ में लाने का आदेश दे दिया।
असंयम से जीने की अपेक्षा संयम में मरना श्रेष्ठ है-

ठाकुर का आदेश पाकर सिपाहियों ने रंगूजी की हवेली को घेर लिया। उन दुष्टों की कार्यवाही का पता सती जी को लग गया। अहो! अवश्य आज मेरे शील पर संकट उपस्थित हो सकता है। उनका मानस कँपित हो उठा, वह विचार करने लगी। चाहे प्राण भी क्यों न चले जाएँ पर मैं अपना शील भ्रष्ट नहीं होने दूंगी। धारिणी, पद्मिनी आदि भी तो मेरे समान अबलाएं थीं, उन्हें कामलोलुपों ने कितना कष्ट दिया था। वे अपने धर्म से नहीं हटी, तो मैं कैसे हट जाऊंगी।

“सेयं ते मरणं भवेः” व्रत को भंग करने की अपेक्षा मरण श्रेष्ठ है। अकार्य सेवन से व्रतों का भंग होता है, इसकी अपेक्षा व्रतों की रक्षा करता हुआ साधक यदि मरण को वरण कर लेता है तो वह आत्मघाती नहीं अपितु “व्रत रक्षक वीर” कहलाता है। अतः अपने प्राणों का उत्सर्ग करके भी शील की रक्षा का दृढ संकल्प धारण करके महासती रंगूजी ने पिछली खिड़की से कूदकर जंगल की शरण लेना ही श्रेयस्कर समझा। ‘धर्मो रक्षति रक्षितः’ कहते हैं जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है।

दृढसंकल्पी की सदा जय होती है-

विचारों के दृढ होते ही रंगूजी एकदम खिड़की से कूद पड़ती हैं। कोई भय नहीं! कोई बाधा नहीं, कितनी साहसिन थीं वह? देवयोग से आपके पैर खिड़की से नीचे कूदने पर एक ऊँट पर पड़े और शरीर को किसी प्रकार की आँच न आई। पास ही खड़े ऊँट वाले ने तसल्ली दी “बहन! डरो मत! मैं तुम्हें निर्विघ्नतया तुम्हारे पीहर पहुँचा देता हूँ। उसकी बात को श्रवण कर पहले तो रंगूजी सहमी। फिर महामंत्र का स्मरण कर आत्मविश्वास के साथ ऊँट पर सवार हो गई। रंगूजी नवकार मंत्र जपती हुई वहाँ से रवाना हुई। कामान्ध ठाकुर की एक न चली और सतीजी नीमच पहुँच गई। घर का

आचार्य श्री चौथमल जी म.सा., पूज्य आचार्य श्री श्रीलाल जी म.सा., उसके बाद पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा., पूज्य श्री गणेशीलाल जी म.सा. को ही अपना गुरु मानती थी। जयपुर में सभी सतियों ने पूज्य श्री शांत-क्रांति के दाता पू. श्री गणेशीलाल जी म.सा. को समर्पणा सौंपी। आचार्य श्री की नेश्राय ग्रहण की। उसी के अनुसार आचार्य श्री नानालाल जी म.सा. के समय एवं वर्तमान आचार्य परमपूज्य दृढसंयमी श्री रामलाल जी म.सा. के समय भी सम्पूर्ण साध्वी समुदाय एक आचार्य श्री की निश्रा में ही समर्पित है।

उपसंहार-

आप श्री के जीवन में संयम की दृढता, त्याग, तपस्या, शील, उदारता और सरलता आदि अनेक गुण विद्यमान थे। गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धा भक्ति थी। ऐसी आत्माएँ ही विश्व की अमूल्य संपत्ति होती है। सचमुच जैन समाज ऐसी महानिधि को पाकर धन्य-धन्य हो गया।

2. रोहिणेय चोर

परिचय-

राजगृह नगर में अनेक राजाओं द्वारा सेवित श्रेणिक राजा राज्य करता था। बुद्धिशाली एवं नीति में पराक्रमशाली उनका एक पुत्र था अभयकुमार। उन दिनों वैभारगिरि की गुफा में साक्षात् रौद्ररूप जैसे मूर्तिमान लोहखुर ने स्वार्थवश अपने पुत्र रोहिणेय से कहा- पुत्र! मेरी प्रतिष्ठा को तुम सदा बढ़ाते रहोगे। तुम अपने कर्म में मुझसे अधिक चतुर, कुशल और साहसी हो, किन्तु एक बात का ध्यान रखना तुम कभी महावीर के निकट मत जाना। उनकी वाणी मत सुनना, बस यह मेरी अंतिम सीख है। रोहिणेय ने संकल्प कर लिया। लोहखुर के मरने के बाद राजगृह में रोहिणेय का आतंक बहुत बढ़ गया था। रोहिणेय रूप परिवर्तन करने में बहुत निपुण था। राजपुरुष राजा श्रेणिक आदि ने भरसक प्रयत्न कर लिया रोहिणेय को पकड़ने का, लेकिन वह किसी भी तरह पकड़ में नहीं आता था।

एक दिन रोहिणेय चोर कानों में उंगलियाँ डाले हुए भगवान महावीर के समवसरण (धर्मसभा) के आगे से होकर जा रहा था, तभी अकस्मात् उसके जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग-10

पैर में कांटा चुभ गया। संत का वचन न सुनने का संकल्प था, परंतु कांटा निकालने के लिए कानों में डाली हुई उंगलियाँ निकालनी पड़ी। इसी दौरान उसने भगवान महावीर के मुखारविन्द से 4 वचन सुने-1. देवों के पैर जमीन से अधर (ऊपर) रहते हैं। 2. उनके गले में पड़ी हुई फूलमालाएँ कुम्हलाती नहीं। 3. उनकी आँखों की पलकें नहीं झपकती और 4. उनके शरीर में पसीना नहीं आता। ये चार वचन सुनकर रोहिणेय वहाँ से सीधा अपनी गुफा में पहुँचा।

अभयकुमार द्वारा रचित मायाजाल-

इधर मंत्री अभयकुमार ने रोहिणेय चोर को पकड़ने का बीड़ा उठाया हुआ था। वे उसकी टोह में घूम रहे थे। एक जगह उन्हें रोहिणेय के होने का शक हुआ। किन्तु पूछने पर उसने अपने को व्यापारी बताया, उसने अपना नाम, पता, ठिकाना दूसरा ही बताया। अभयकुमार ने उससे मित्रता कर ली और उसे भोजन का न्यौता दिया। उसे खाने में कुछ मादक द्रव्य खिला दिये, जिससे वह बेहोश हो गया। उसे बेहोशी की हालत में वहाँ ले जाया गया जहाँ अभयकुमार ने पहले से ही स्वर्ग की रचना कर रखी थी। वहाँ देव एवं देवाँगनाओं का वेश धारण किये हुए कई युवक-युवतियाँ सुसज्जित खड़े थे। रोहिणेय को वहाँ एक पलंग पर सुला दिया। जब रोहिणेय होश में आया तो उसे जय, विजय से बधाया गया और कहा गया कि आप स्वर्ग में आये हैं। हम देव और देवाँगनाएँ आपकी सेवा में हाजिर हैं। स्वर्ग में आने वाले देव को सर्वप्रथम यह पूछा जाता है कि वह कौन है, कहाँ का है, उसने क्या-क्या सुकर्म-दुष्कर्म किये हैं? उत्तर देने से पूर्व वहाँ की परिस्थितियों को देखकर रोहिणेय ने सोचा-यह सचमुच देवलोक है या मुझे फंसाने के लिए अभयकुमार के द्वारा रचा मायाजाल है।

संतवाणी का अद्भूत प्रभाव-

इतने में उसे भगवान महावीर के सुने वचन याद आए-अहो! यह सब मायाजाल है। तभी दिव्यरूपधारियों ने फिर से कहा-आप अपने पूर्वजन्म के सुकृत कर्म को सुनाइए।

रोहिणेय बोला-मैंने पूर्वजन्म में सुपात्रदान दिया, तप किया, गुरुभक्ति की थी, और भी अनेक धर्म कार्य किये। देवों ने कहा-अच्छा! अब अपने दुष्कृत्यों का भी बयान कीजिए। रोहिणेय ने कहा-सतत् साधुसमागम होने से मैंने अपने जीवन में कोई गलत काम नहीं किया। आखिर में कोई अपराध

साबित नहीं होने के कारण रोहिण्य को छोड़ दिया गया।

सत्संग से वंचित रहने का पश्चाताप-

अब रोहिण्य विचार करने लगा-अहो! पिताजी ने व्यर्थ ही चिरकाल तक मुझे भगवान के वचनमृतों से वंचित रखा। अगर प्रभु के वचन मेरे कानों में नहीं पड़ते तो मैं अब तक इनकी मार खाकर खत्म कर दिया गया होता। अनिच्छा से भी सुने हुए भगवद्वचनों ने आज मुझे बचा लिया। क्षणिक वचनों का भी इतना सुफल मिला। अगर मैं सारा उपदेश रूचिपूर्वक सुनता तो कितना लाभ मिलता। इस प्रकार शुभ चिंतन करता हुआ रोहिण्य सीधा अहिंसा का उद्घोष करने वाले भगवान महावीर के पास पहुँचा और उन्हें भावपूर्वक वंदन नमस्कार किया।

संसार की क्षणिकता का बोध-

प्रभु महावीर ने रोहिण्य तथा परिषद् को धर्म देशना दी। सांसारिक वैभव नाशवान् है। ये पदार्थ क्षणिक सुख एवं बहुत लंबे समय तक दुःख देने वाले हैं। फलतः रोहिण्य को संसार से विरक्ति हो गई। उसने प्रभु महावीर के समक्ष सारे अपराध मंजूर कर शुद्ध सरल हृदय से पश्चातापपूर्वक आत्मालोचना की तथा श्रेणिक राजा से क्षमायाचना कर पर्वत, नदी, वन, वृक्ष, शमशान आदि जिन स्थानों पर धन गड़ा था, अभय कुमार को सौंप दिया। अभयकुमार ने भी जिन-जिन व्यक्तियों का धन था उन्हें दे दिया। निर्लोभी और नीतिमान मंत्रियों की और कोई दुर्नीति नहीं होती। 'चोर से बना चरित्रवान'-उसके बाद रोहिण्य ने सगे-संबंधियों को त्याग, वैराग्य और परमार्थ की बातें कहकर उन्हें प्रतिबोधित किया, फिर स्वयं भगवान के चरणों में पहुँचा। श्रेणिक राजा ने खूब धूमधाम से रोहिण्य का दीक्षा महोत्सव किया। प्रभु महावीर से दीक्षा अंगीकार कर कर्मक्षय के लिए विविध प्रकार की तपस्या स्वीकार की। अंतिम समय में संलेखना संधारा कर देवलोक में उत्पन्न हुआ। जिनवाणी श्रवण से निंदनीय व्यक्ति भी वंदनीय, पापी भी पावन एवं कुपथ से सुपथगामी बन जाता है। यह है-सत्संग का हृदयस्पर्शी प्रभाव और महत्त्व। साधुओं की संगति करनी चाहिए। संगति पूरे जीवन को प्रभावित करती है। वह उन्नति के द्वार खोल देती है।

One must be ever ready to act in accordance with the tenets of one's faith-सुने हुए धर्म को ग्रहण कर उस पर आचरण करने को तत्पर रहना चाहिए।

3. वीर लोकाशाह

प्रभु महावीर के बाद भस्म ग्रह के प्रभाव से आर्य स्थूलि, आर्य सुहस्ति, आर्य महागिरी के शासनकाल तक तो विचारों में मतभेद होते हुए भी शासन व्यवस्था में एकता का रूप बना रहा लेकिन उसके बाद धीरे-धीरे मान्यताएँ, क्रियाएँ, वस्त्र, आचार संहिता, गच्छ, चैत्य, मुखवस्त्रिका, रजोहरण, दंड, आहार, विहार आदि निमित्तों को लेकर भंयकर विग्रह का रूप बन गया। श्रमण वर्ग यंत्र-मंत्र-तंत्र, औषध, निमित्त, यशलिप्सा, धन संग्रह की वृत्ति में पड़कर निर्वद्य साधना के स्थान पर प्रतिमा निर्माण एवं पूजा विधि आदि का सावद्य उपदेश देने लग गये। निरवद्य साधना पर आवरण बना रहे, इस उद्देश्य से, साधु व यति के अलावा जैनागम कोई पढ़े ही नहीं इसलिए शास्त्र गुप्त भण्डारों में रख दिये गये। "पढ़े सूत्र तो मरे पुत्र" जैसी डराने वाली भ्रांति पैदा करने लगे। रास, चौपाई, जन्म कल्याणक आदि के माध्यम से जन समुदाय को आल्हादित करने लगे। जिससे स्वच्छंदता इतनी बढ़ गई कि जन साधारण में धर्म व धर्मगुरुओं के प्रति उदासीनता व्याप्त हो गई लेकिन किसी में भी विरोध करने की क्षमता ही पैदा नहीं हो रही थी। इंतजार था एक ऐसे क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का जो इस पर प्रहार करके शुद्ध साधुमार्ग का स्वरूप जन-जन तक पहुँचा सके।

जन्म व परिचय-

सूर्यास्त के समय आकाश में मोहक रंग छा जाते हैं और आकाश में ही विलीन हो जाते हैं। सागर में अनेक प्रकार की तरंगे उठती हुई दिखाई देती हैं और सागर में ही समा जाती हैं। उसी प्रकार इस विश्व में अनेक प्रकार के जीव जन्मते हैं, जीते हैं और काल के सागर में समा जाते हैं लेकिन कोई ऐसी विरल आत्मा दुनिया में आती है, जो अपने सत्कार्यों से अमर हो जाती है। वह शुभ समय भी आया जब दो हजार वर्ष के भस्म ग्रह का प्रभाव मंद पड़ा। संवत् 1472 कार्तिक सुदी पूर्णिमा की पवित्र रात्रि में अरहटवाड़ा के हेमाशाह मेहता की धर्मपत्नी गंगाबाई की कुक्षि से एक पुत्र का जन्म हुआ। जिसका नाम लोकचंद्र रखा गया। ये कोई परिवार, कुटुम्ब या जाति के शाह बनकर नहीं आये थे परन्तु वे तो पूरे विश्व के जैन समाज के शाह बनकर आये थे। इस विश्व में कोई दानवीर, कोई त्यागवीर तो कोई

शूरवीर होते हैं। जिसमें लोकाशाह धर्मवीर बनकर आये थे। धीरे-धीरे आपके जीवन की यात्रा शुरू हुई। लोकाशाह का बचपन सुखपूर्वक व्यतीत हुआ। बचपन से ही आपकी अनेक घटनाओं ने जनमानस के हृदयपटल पर गहरी छाप छोड़ दी। यौवनावस्था में सिरौही के शाहजी की पुत्री सुदर्शना से विवाह सम्पन्न हुआ और 3 वर्ष बाद एक पुत्र हुआ जिसका नाम पूर्णचंद्र रखा। आपके पिता का व्यवसाय जवाहरात का था। युवावस्था में ही आपने पिता का व्यवसाय संभालकर निपुणता प्राप्त की। आपकी लेखनी बहुत सुन्दर व मोड़दार थी तथा आपकी स्मरणशक्ति भी बहुत तेज थी।

कोषाध्यक्ष की पदवी-

23 वर्ष की वय में पिता का व उसके एक वर्ष पश्चात् माता का वियोग हो गया। जिससे मन उचट गया और आप वहाँ से “अहमदाबाद” आकर जवाहरात का व्यवसाय करने लगे। उस समय अहमदाबाद की धरती पर मोहम्मद शाह का राज्य था। एक बार राज्यसभा में सूरत के जौहरी दो हीरे लेकर आये। हीरे के परीक्षण हेतु जौहरियों की सभा बुलाई गई। उनके साथ आप भी गये। सभी ने दोनों हीरों को खरा बताया, पर आपने एक ही हीरे को खरा बताया। आपने एक हीरे की कीमत सवा लाख और दूसरे की कौड़ी की भी नहीं बताई। परीक्षण से आप की बात खरी उतरी जिससे बादशाह ने खुश होकर मान-सम्मान के साथ आपको कोषाध्यक्ष की पदवी सौंपी।

संसार से विरक्ति-

एक समय राजकाज की खटपट से बादशाह के पुत्र कुतुबशाह ने क्रोध के आवेग में आकर स्वयं के पिता की हत्या कर दी। सत्ता और पदवी एक ऐसी चीज है जिससे किसी के दिल में अहंकार जगता है तो किसी के दिल में ईर्ष्या। धन के पीछे पुत्र द्वारा ही स्वयं के पिता की हत्या कर दी गई। यह जानकर लोकाशाह खिन्न हो गये “नष्टमोह स्मृति लब्ध्या” संसार की निराशयता और स्वार्थमयता को निहारते ही आपके मन में संसार से विरक्ति पैदा हो गई, राजसभा में आना जाना बंद कर दिया तथा निवृत्तिपूर्ण जीवन जीने लगे। Simple Living and High Thinking अर्थात् “सादा जीवन उच्च विचार” श्रावक का विचार हमेशा ऊँचा यानि मात्र मोक्ष जाने का होता है।

सच्चे धर्म की पहचान-

संयोग से एक दिन ज्ञानजी यति गोचरी हेतु आये। आप कुछ लेखन कार्य कर रहे थे। ज्यों हि उनकी दृष्टि आपके अक्षरों पर पड़ी तो वे बहुत प्रभावित हुए, आपके अक्षरों से शास्त्रों के लेखन की सेवा मांगी और कहा कि आपको महान् श्रुत सेवा का लाभ मिलेगा। शाह ने अहो भाव से कहा! शासन सेवा का लाभ मुझे मिल रहा है, यह तो मेरा सौभाग्य है। यति जी ने सभी शास्त्रों के पत्रों दे दिए।

सर्वप्रथम उन्होंने दशवैकालिक सूत्र लिखना प्रारंभ किया, उसमें प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा पढ़ते ही चिन्तन मनन शुरू हुआ। आपके अन्तर्चक्षु खुल गये और आपने सोचा- कहाँ तो आगम की निरवद्य वाणी और कहाँ वर्तमान समाज में व्याप्त आडम्बर, अंधविश्वास और हिंसक प्रवृत्ति से तत्कालीन साधु समाज शिथिलाचारी और मूर्तियों की आड़ में परिग्रहधारी हो गया है। धर्म की यह विडम्बना देखकर लोकाशाह ने संकल्प किया कि मैं इस पाखण्ड को हटाकर शुद्ध जैनत्व का प्रचार करूँगा। फिर शाहजी ने सभी पत्रों की 2-2 प्रतिलिपियाँ लिखी। जिसमें से एक यतिजी के लिए व दूसरी स्वयं के लिए रखी। कुल 32 आगमों की प्रतिलिपि उतारने के बाद इस बात का रहस्योद्घाटन होते ही यतिजी ने लिखवाना बंद कर दिया।

क्रांतिकारी कदम-

समय पाकर लोकाशाह आगमों का गहरा अध्ययन करके शुद्ध साधुमार्गी धर्म का प्रचार करने लगे। जड़ पूजा को हटाकर आत्मा की ओर ध्यान आकर्षित किया। जिससे लाखों लोग शुद्ध साधुमार्ग का अनुसरण करने लगे। एक समय अणहिलपुर पाटण वाले श्रेष्ठिवर्य लखमशी भाई लोकाशाह के पास चर्चा करने आये, लखमशी भाई बोले-भईया! मैंने सुना है, आप कोई नया पंथ चला रहे हैं।

लोकाशाह-भाई साहब! न तो मैं कोई उपदेशक हूँ, न नया पंथ खड़ा करने की भावना है। हाँ, कालक्रम से सत्य के ऊपर आये हुए आवरण को हटाकर उसका प्रतिपादन करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

लखमशी भाई-सुना है, आप मूर्ति पूजा का विरोध करते हैं।

लोकाशाह-भाई साहब मेरी विरोध की कोई भावना नहीं है लेकिन जैनागमों के अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट है कि मूल आगमों में कहीं

भी तीर्थकरों की प्रतिमा, पूजा का उल्लेख नहीं है और न ही इन कृत्रिम तीर्थों की यात्रा से मोक्ष प्राप्त हो सकता है। आगम में तो साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चार ही तीर्थ प्रतिपादित हैं।

अच्छा, अब आप ही बताएं मैं और मेरा चित्र या भारत और उसका नक्शा एक हो सकता है क्या?

लखमशी भाई-नहीं हो सकता है।

लोकाशाह-वैसे ही भगवान और कृत्रिम मूर्ति एक हो सकती है क्या? नहीं! तो आप ही चिंतन करें, जितने भी तीर्थकर हो चुके हैं, वे वीतरागी, निरंजन, निराकार सिद्धावस्था में विराजमान हैं तो उनका आकार या मूर्ति कैसी? मूर्ति एक कला और पुरातत्व की एक रिद्धि हो सकती है पर धर्म में तो अहिंसा, संयम और तप की आराधना का ही महत्व है।

इस प्रकार जब परस्पर चर्चा चली तो लखमशी भाई जो आये तो समझाने थे पर स्वयं ही समझ गये। इसी तरह सिरौही के नागसी, अरहड़वाड़ा के दलीचंद जी, पाटण के मोतीचन्द जी, सूरत के शंभुजी-ये चारों ही संघपति भी अपने-अपने विशाल संघ के साथ तीर्थ यात्रा करते हुए अहमदाबाद आये और जब उन्होंने भी लोकाशाह का आगम सम्मत उपदेश श्रवण किया तो इतने प्रभावित हुए कि उनमें से एक साथ 45 व्यक्तियों ने आगमानुकूल संयम ग्रहण करने की तीव्र इच्छा प्रकट की तब लोकाशाह ने मुनि श्री ज्ञानजी स्वामी को निमंत्रण देकर 21 ठाणे से बुलाया और वि.सं. 1527 वैशाख शुक्ला 3 को महोत्सवपूर्वक दीक्षा दिलवाई। साथ ही लाखों चैत्यवासी लोकाशाह के अनुयायी बने। इस प्रकार संघ दिन दुना रात चौगुना प्रगतिशील होता गया।

उपसंहार-

आज भी लोग वीर लोकाशाह के उपकारों को याद करते हैं। हमारे भीतर भी यदि अंधश्रद्धा शिथिलाचार प्रवेश कर गये हों तो उसे दूर कर भगवान के द्वारा बताये गये सत्य मार्ग पर चलें।

॥ णमो आयरियाणं ॥



काव्य विभाग

1. पालो दृढ़ आचार

(तर्ज :- वो दिन धन होसी)

पालो दृढ़ आचार, जैनों! सब मिलकर ॥ध्रुव॥
प्रातःकाल सदा उठ जावों, अपने निज स्थानक में आवो।
आलस दूर निवार ॥१॥ जैनों सब....
संतों को पंचांग नमाओ, देव धर्म को मन में ध्याओ।
जपो मन्त्र नवकार ॥२॥ जैनों सब....
सामायिक का लाभ उठाओ, प्रभु प्रार्थना विधि से गावो।
करो मधुर उच्चार ॥३॥ जैनों सब....
नित्य नियम चौदह चितारो, व्रत पचक्खाण नया कुछ धारो।
रोको आश्रव द्वार ॥४॥ जैनों सब....
करो मनोरथ त्रय का चिन्तन, अरू विश्राम चार का सुमिरन।
भावो भावना बार ॥५॥ जैनों सब....
सुनो सदा मुनियों का भाषण, पूछो प्रश्न करो हल धारण।
सीखो ज्ञान अपार ॥६॥ जैनों सब....
छाने बिना न पानी पीओ, अशुद्ध भोजन कभी न खाओ।
पालो नित चौविहार ॥७॥ जैनों सब....
अष्टम, पाक्षिक पौषध धारो, प्रतिक्रमण कर दोष निवारो।
प्रायश्चित लेओ धार ॥८॥ जैनों सब....



का होता है।

साधु व श्रावक में असमानताएँ-

साधु/साध्वी

1. साधु 5 महाव्रतधारी, 5 समिति 3 गुप्ति के धारक होते हैं
2. साधु निर्दोष आहार पानी गृहस्थ के घर से लेते हैं अर्थात् भिक्षावृत्ति करते हैं।
3. साधु मुहाजीवी अर्थात् निर्दोष भिक्षा लेने वाले होते हैं।
4. ये अणगार होते हैं, इनका घर नहीं होता।
5. साधु सचित्त पदार्थों के सेवन का त्याग करते हैं।
6. साधु-प्रतिक्रमण में श्रमणसूत्र की पाटी का उच्चारण करते हैं।
7. साधु-साध्वी वाहन आदि का उपयोग नहीं करते बल्कि जीवों की रक्षा करते हुए नंगे पैर तथा सूर्योदय से सूर्यास्त तक ही विचरण करते हैं।

श्रावक/श्राविका

1. श्रावक 1 से 12 व्रतधारी होते हैं।
2. श्रावक आजीविकावृत्ति करते हैं। श्रावक गोचरी नहीं कर सकता। 11वीं प्रतिमाधारी श्रावक ही भिक्षावृत्ति कर सकता है। दयाव्रत करने वाला श्रावक, भिक्षु दया (गोचरी की दया) नहीं कर सकता। श्रावक मुहादायी अर्थात् निःस्वार्थ भाव से निर्दोष भिक्षा देने वाले होते हैं।
3. ये सागार होते हैं, इनका घर होता है।
4. श्रावक सचित्त-अचित्त पदार्थों की मर्यादा करते हैं।
5. श्रावक, श्रावक सूत्र का उच्चारण करते हैं अर्थात् अपने व्रतों में लगे दोषों का प्रतिक्रमण करते हैं। गोयचरियाए, प्रतिलेखन दोष, 33 बोल, नमोचउवीसाए आदि पाटी का उच्चारण श्रावक नहीं करते हैं।
6. श्रावक मर्यादा में रहकर वाहन आदि का प्रयोग करते हैं।

8. साधु के स्थान पर रात्रि में स्त्री का एवं साध्वी के स्थान पर पुरुष वर्ग का निवास तथा चर्चा-वार्ता वर्जित है।
 9. साधु नियम रूप से अपने सभी भण्डोपकरण की प्रतिदिन दो बार प्रतिलेखना करते हैं।
 10. साधु तीन प्रकार के पात्र रखते हैं। लकड़ी का, तुम्बे का एवं मिट्टी का।
 11. साधु गृहस्थ के घर में या जहाँ पर अग्नि, पानी का आरंभ होता है, वहाँ एक या दो रात्रि से अधिक नहीं ठहरते हैं।
 12. साधु मनुष्य ही होते हैं।
 13. साधु का छोटे से चौदहवां गुण-स्थान होता है।
 14. साधु मोक्ष जा सकते हैं।
 15. साधु एक गाँव या नगर में 29 रात व साध्वी 58 रात से अधिक नहीं रुक सकती।
 16. साधु के मुँहपत्ती व रजोहरण अनिवार्य होता है।
- जबकि श्रावक कुटुम्ब वर्ग के साथ निवास करता है, लेकिन अयोग्य स्थान पर निवास नहीं करता।
- जबकि श्रावक के लिए नित्य प्रति अपने सभी भण्डोपकरण की प्रतिलेखना करने का नियम नहीं है।
- श्रावक सभी प्रकार के बर्तन आदि का मर्यादा के उपरांत त्याग करता है।
- श्रावक अनर्थदंड का त्याग करते हैं तथा सामायिक पौषध के समय सेल की घड़ी, कूलर, पंखा आदि इलेक्ट्रोनिक साधन अर्थात् तेउकायिक,अपकायिकादि जीवों की विराधना नहीं करते।
- श्रावक तिर्यच पंचेन्द्रिय व मनुष्य दोनों हो सकते हैं।
- व्रतधारी श्रावक का पाँचवां तथा व्रतरहित सम्यक्दृष्टि श्रावक का चौथा गुणस्थान होता है।
- श्रावक का साधु बने बिना मोक्ष संभव नहीं है।
- श्रावक के लिए ऐसा कोई नियम नहीं, उसका स्थायी निवास होता है।
- श्रावक के लिए सामायिक, पौषध, संवर में मुँहपत्ती, पुँजनी, डाँडिया का उपयोग एवं संत मुनिराजों से

ज्ञान चर्चा आदि में मुखवस्त्रिका धारण करना अनिवार्य है।

17. साधु वर्ष में दो बार सिर का लोच करते हैं। श्रावक के लिए लोच अनिवार्य नहीं है।
18. पंचपरमेष्ठी में साधु का स्थान है। श्रावक का नहीं है।
19. साधुजी द्वादशांगी वाणी के ज्ञाता एवं पाँचों ज्ञान के धारक हो सकते हैं। किन्तु श्रावक मुख्य रूप से जीवाजीव के ज्ञाता होते हैं एवं मति, श्रुत, अवधि ज्ञान के धारक हो सकते हैं।
20. साधुजी श्वेत एवं अल्पमूल्य के वस्त्र ही उपयोग में लेते हैं। श्रावक मर्यादित वस्त्र के अलावा त्याग करता है।
21. साधुजी का चोलपट्टा लगभग घुटने से 4 अंगुल नीचे होता है। श्रावकजी सामायिक आदि आराधना में खुली लांग की धोती या चोलपट्टा धारण करते हैं।
22. साधुजी 72 एवं साध्वीजी 96 हाथ वर्ग वस्त्र से अधिक नहीं रखते। श्रावक अपनी साधना को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए मर्यादित वस्त्र आदि रखते हैं।
23. साधुजी 27 गुणों के धारक होते हैं। श्रावकजी 21 गुणों से संपन्न होते हैं।
24. साधु अनेक प्रकार के अभिग्रह विशेष से अपने जीवन को सुसज्जित करते हैं। श्रावकजी अपने पर्वत जितने पाप को राई जितने करने हेतु 14 नियम आदि का पालन करते हुए अपने जीवन को सुसज्जित करते हैं।

पवित्र भावनाओं से ही आचरण पवित्र होता है-व्यवहार शुद्ध होता है। आध्यात्मिक साधना में गति आती है। अतः साधक को अपने अंगीकृत व्रतों का अच्छी तरह से पालन करना चाहिये। तीर्थंकर भगवान ने भव्य आत्माओं के कल्याण के लिए व्यवस्थाएं मर्यादाएं बताईं। जहाँ जीवन अनुशासित है वहीं आत्मा का विकास है।

“भिक्ष्वाए वा गिहत्ये वा, सुव्वए कम्मइ दिवं”

चाहे साधु हो या श्रावक जो सुंदर अर्थात् निरतिचार व्रत पालन करने वाला है वही देवलोक में जाता है।

2. सचित्त-अचित्त विवेक

पृथ्वीकायिक (सचित्त)

1. रंगोली
2. खड़ी
3. पानी में भीगी खड़ी
4. सूखी मुलतानी मिट्टी
5. पानी में डाली हुई मुलतानी मिट्टी
6. काली मिट्टी
7. पीली मिट्टी
8. चार अंगुल नीचे की खुदी हुई मिट्टी
9. तेज आंधी तूफान में उड़कर आने वाली मिट्टी
10. हिंगलु
11. हड़ताल
12. पत्थर का भीतरी भाग
13. भूमि का भीतरी भाग
14. हीरे का भीतरी भाग
15. फर्श का भीतरी भाग
16. पत्थर का टुकड़ा टूटने पर बीच का भाग
17. घिसाई किया जाता हुआ पत्थर
18. घिसते हुए पत्थर का पाउडर
19. तत्काल खदान से निकला पत्थर
20. तत्काल खदान से निकली धातु
21. भोडर (अभ्रक) की राखी
22. सफेद नमक
23. सेंधा नमक
24. सिके हुए नमक में पानी छूट गया हो तो
25. स्लेट पर लिखने वाली कलम (बरता)

26. तालाब के किनारे की जमी पपड़ी।

पृथ्वीकायिक (अचित्त)

1. गुलाल
2. सिन्दूर
3. पाउडर
4. रंगीन कलम
5. सचित्त मिट्टी पर यातायात आवागमन होने पर
6. काला नमक
7. सिका नमक
8. काले नमक में पानी छूटने पर भी अचित्त
9. चिप्स पर डाला नमक
10. चॉक (Chalk)

नोट :- चॉक अचित्त होता है और बरता सचित्त होता है।

अपृथ्वीकायिक (सचित्त)

1. बारिश का पानी
2. नल का पानी
3. तालाब का पानी
4. हैण्डपम्प का पानी
5. ओस का पानी (बूंदे)
6. कुएँ का पानी
7. चूने का पानी
8. बर्फ, बर्फ का गोला, बर्फ का पानी
9. दीवार से निकलने वाला पानी
10. धोवन पानी (5 प्रहर पश्चात्)
11. धोवन पानी बनने के बाद 15 मिनट तक

12. डिस्टिल वाटर

13. गर्म पानी (वर्षाकाल में 3 प्रहर के बाद, शीतकाल में 4 प्रहर के बाद, ग्रीष्मकाल में 5 प्रहर के बाद सचित्त)

14. आटा गूंदते समय यदि उसमें सचित्त (कच्चा) पानी डाला गया है

15. फ्रीजर में अंदर बर्तन पर जमी बर्फ या पानी सचित्त

16. A.C. से निकला हुआ पानी

अपृथ्वीकायिक (अचित्त)

1. धोवन पानी संभवतया 15 मिनट बाद तथा लगभग 5 प्रहर तक
 2. गर्म पानी (वर्षा, सर्दी, गर्मी में क्रमशः 3, 4, 5 प्रहर तक अचित्त)
 3. साजी का पानी (चाहे कितने भी दिनों का हो)
 4. दूध के बर्तन को धोया हुआ पानी
 5. आटे की परात आदि बर्तन धुला पानी
 6. चावल, दाल, पोहा आदि धान्यों का धुला पानी
 7. भाप
 8. बर्तन के अन्दर ठण्डी वस्तु को रखने पर बर्तन के बाहर आने वाला पानी। (जो वातावरण की भाप का परिवर्तित रूप है)
- ज्ञातव्य :-** 1. सीलन (Moisture) का संघटा नहीं होता।
2. गीजर का पानी लेना नहीं किन्तु संघटा नहीं टालना।

तेजस्कायिक (सचित्त)

1. अग्नि
2. भोभर
3. अंगारा
4. आकाश में चमकने वाली बिजली
5. विद्युत (Electricity)

6. जलता दीपक
7. जलता धूप
8. जलता हुआ लोभान, जलती हुई मोमबत्ती
9. जलती हुई अमरबत्ती
10. जलती हुई तीली
11. चालू फ्रीज
12. चालू टार्च
13. चालू कोलक्यूलेटर
14. चालू टी.वी. रिमोट (In Operation)
15. चालू गैस लाइट
16. चलती गाड़ी
17. बैटरी से चलने वाली घड़ी (सैल घड़ी)
18. कम्प्यूटर (हर समय)
19. गाड़ी का रिमोट (जब चालू हो)
20. सौर (Solar) कुकर जब चालू हो
21. सभी प्रकार के इलेक्ट्रिक उपकरण चालू हालत में।
22. सौर ऊर्जा से संचालित वस्तुएं चालू हालत में।

तेजस्कायिक (अचित्त)

1. राख
2. सूर्य ताप
3. टी. वी. जब बंद हो
4. टार्च जब बंद हो
5. कोलक्यूलेटर जब बंद हो
6. गैस लाइट जब बंद हो
7. प्लग लगा हो पर स्विच ऑन नहीं हो
8. सौर कुकर जब बंद हो।

वनस्पतिकायिक

| क्र.स. | वस्तु | सचित | अचित्त |
|--------|-------------------|---|--|
| 1. | बादाम (Almond) | साबुत, ठंडे पानी में भीगा हुआ एवं जिसके दो टुकड़े न किये हों। | पीसा हुआ, तेज गर्म पानी में भीगा हुआ जिसके सीधे दो फाड़ है अथवा नुक्का रहित भाग, नमकीन (Flavoured) |
| 2. | खुरमानी (Apricot) | बीज सहित | बीज रहित |
| 3. | काजू (Cashewnut) | — | सभी प्रकार के |
| 4. | खजूर (Dates) | बीज सहित | बीज रहित |
| 5. | अंजीर (Figs) | सूखा, साबुत या भीगा हुआ (Milk Shake) बिना उबला हुआ | शस्त्र परिणत — जैसे दूध में उबला हुआ पका हुआ |
| 6. | अखरोट (Walnuts) | छिलके सहित | टुकड़ा |
| 7. | मूंगफली (Peanuts) | कच्ची मूंगफली | सिकी हुई, उबली हुई, पीसी हुई आदि |
| 8. | पिस्ता (Pistacho) | सादा पिस्ता | नमकीन, टुकड़े |
| 9. | किशमिश (Raisins) | सूखी, भिगाई हुई | शस्त्र परिणत — सेकी हुई, उबली हुई |
| 10. | केसर (Saffron) | — | हर प्रकार से |
| 11. | नोजा (तिलगोजा) | छिलके सहित/रहित | सिका हुआ |

| क्र.स. | वस्तु | सचित | अचित |
|--------|------------------|---|---|
| 12. | चिरौंजी | साबुत | सिकी हुई |
| 13. | बीज (सूखे, गीले) | खरबूज, तरबूज आदि सभी प्रकार के बीज | तले, उबले, सेंके हुए |
| 14. | सुपारी | बड़ी सुपारी (छायली अखण्ड सुपारी) जैसे साते की कच्ची सुपारी | चिकनी सुपारी, मीठी सुपारी, छायली सुपारी (उबली हुई) |
| 15. | मुनक्का | बीज सहित | बीज रहित/शस्त्र परिणत |
| 16. | खारक | बीज सहित | बीज रहित |
| 17. | मुरब्बा | — | आंवला, बेल, सेवफल बेर आदि सभी प्रकार के मुरब्बे |
| 18. | फिटकरी | — | अचित |
| 19. | सौंफ | साबुत, कच्ची | सेकी, पीस कर छनी हुई |
| 20. | हींग | — | अचित (सूखी, गीली) |
| 21. | तेजपत्ता | — | अचित |
| 22. | जीरा | साबुत | सेका, पिसा हुआ |

| क्र.स. | वस्तु | सचित | अचित |
|--------|------------------------------------|------------------------------------|-------------------------------------|
| 23. | राई | साबुत | पिसी, सेकी, छोंक में डाली हुई |
| 24. | सादा नमक, सैंधा नमक | सादा व सिका हुआ नमक पानी छोड़ने पर | सिका हुआ |
| 25. | काला नमक | — | अचित |
| 26. | अजवाइन | दाने | सिकी हुई या पीसकर कपड़े से छानी हुई |
| 27. | दालचीनी | — | अचित |
| 28. | सूखी लाल मिर्ची (Chilly Flakes) | साबुत, टुकड़ा | पिसी हुई व छनी हुई |
| 29. | मिर्च पाउडर | बिना छना | अचित (छना हुआ) |
| 30. | सूखा धनिया | साबुत, आधा टुकड़ा | पिसा हुआ |
| 31. | नींबू का सत | — | अचित |
| 32. | लौंग | — | अचित |
| 33. | मेथी भाजी | हरी पत्ती | सूखीपत्ती (पाना मेथी) |
| 34. | दाना मेथी | साबुत, भीगी हुई, कच्ची | पिसी हुई, पचाई हुई, उबली हुई |
| 35. | सौंठ | — | पाउडर, गांठिया |

| क्र.स. | वस्तु | सचित | अचित |
|--------|---------------------------|------------|------------------------------------|
| 36 | सोने/चांदी का वरक | — | अचित |
| 37 | गोंद | — | अचित |
| 38 | साजी | — | अचित |
| 39 | शहद | — | अचित |
| 40 | मुलेठी | — | टुकड़ा, पिसा हुआ |
| 41 | पीपरामूल | — | अचित |
| 42 | तालमखाणा | — | अचित |
| 43 | गुड़ | — | अचित, रात में पानी में भीगा हुआ भी |
| 44 | शक्कर, चीनी, मिश्री, बूरा | — | अचित |
| 45 | अमचूर | — | टुकड़ा, पिसा हुआ |
| 46 | जायफल | साबुत | घिसा हुआ, पिसा हुआ, पचाया हुआ |
| 47 | अनारदाना | गीला, सूखा | पिसा हुआ |
| 48 | खस-खस | कच्चा दाना | सिका हुआ |
| 49 | तिल | कच्चा दाना | सिका हुआ |

| क्र.स. | वस्तु | सचित | अचित |
|--------|------------------|------------------------|---|
| 50 | इमली | साबुत, बीज सहित, कच्ची | बीज रहित पकी इमली |
| 51 | हल्दी | कच्ची हल्दी | सूखी, पिसी हुई |
| 52 | इलायची | साबुत, दाने | सिकी हुई, पाउडर, चाशनी वरक लगी हुई |
| 53 | पीपर | साबुत | सिकी हुई, पीसी हुई (कपड़ा छान) |
| 54 | हरड़ | बड़ी हरड़ | छोटी हरड़ |
| 55 | चूरी/मीठी सौंफ | — | अचित |
| 56 | कायफल | — | अचित |
| 57 | कांगणी (राजगिरी) | दाने | लड्डू, चक्की, आटा |
| 58 | मूसली | गीली | सूखी |
| 59 | काली मिर्च | साबुत | पाउडर, टुकड़ा (या दरदरा किया हुआ) |
| 60 | चन्दन | — | अचित |
| 61 | चावल | (छिलका सहित) | छिलके निकले, आटा (कच्चे दाने, पके हुए) |

| क्र.स. | वस्तु | सचित | अचित |
|--------|---|--|--|
| 62 | साबुदाना | — | अचित |
| 63 | मुरमुरा (मूडी) | — | अचित |
| 64 | दाल (छिलका, बिना छिलका) | — | अचित |
| 65 | साबुत चना, मोठ, मूंग, मसूर, राजमा आदि सभी | सूखा/भीगा हुआ | पकाया हुआ |
| 66 | पिसा हुआ आटा | बिना छना हुआ | छना हुआ |
| 67 | कंद, मूल | कच्चा | पका हुआ |
| 68 | फूल | हरे, कच्चे, गंदे का सूखा फूल बीज सहित | सूखी हुई पंखुड़िया, बीज रहित गुदा भाग |
| 69 | फल | कच्चे, पके हुए बीज सहित | बीज रहित गुदा भाग |
| 70 | बीज/गुठली | गीला, सूखा, भीगा हुआ | पकाया हुआ, पिसा हुआ |
| 71 | छिलके | सभी हरी सब्जी के छिलके | पके हुए फलों के छिलके |
| 72 | अचार (Pickle) | अचार डालने के आठ दिन तक, नींबू का अचार जब तक छिलका न गले | आठ दिन के पश्चात् का अचार/ नींबू का छिलका गल जाने पर |

| क्र.स. | वस्तु | सचित | अचित |
|--------|--|---|---|
| 73 | केला | कच्चा | पका |
| 74 | अन्नानास | कांटे सहित | कांटे रहित |
| 75 | अंगूर | साबुत, गर्म पानी से निकाला हुआ | शस्त्र परिणत-सब्जी बनी हुई, पूरा उबला हुआ |
| 76 | भुट्टा | सिका हुआ (मिश्र की शंका) दाने साबुत, छिले हुए | उबला हुआ, दाने निकाल के सिके हुए |
| 77 | सिंघाड़े, कच्चे हरे बादाम | साबुत छिले हुए | उबले हुए |
| 78 | पका नारियल | बीज सहित, कच्चे पानी से धोया हुआ | बीज रहित नारियल के टुकड़े व पानी |
| 79 | कच्चा दूध | — | अचित |
| 80 | मक्खन | — | अचित |
| 81 | गेहूँ, जौ, चना, ज्वार, बाजरी, मक्का इत्यादि | साबुत सचित | छना हुआ आटा, दलिया |
| 82 | सभी प्रकार की हरी सब्जी सुधारी हुई, कचूर, सलाद | सचित | पकी हुई सब्जी |
| 83 | स्ट्रॉबेरी | साबुत, सुधारी हुई (Milk Shake टुकड़े सहित) | ज्यूस कपड़े से छना हुआ (20 मिनट बाद) |

| क्र.स. | वस्तु | सचित | अचित |
|--------|------------------------------------|------------------|--|
| 84 | नीबू का टुकड़ा | बीज सहित | बीज रहित |
| 85 | पापड़ खार | - | अचित |
| 86 | लीलान-फूलन सहित वस्तुएँ | सचित | - |
| 87 | हल्की सी फ्राई की हुई सब्जियाँ | सचित | - |
| 88 | कच्ची प्रत्येक वनस्पति का ज्यूस | बिना छना | बारीक कपड़े से छना हुआ (निकलने के 20 मिनट बाद) |
| 89 | कन्द, मूल, साधारण वनस्पति का ज्यूस | छना हुआ या अनछना | शस्त्र परिणत अर्थात् उबला हुआ या नमक, ग्लूकोस, शक्कर आदि मिलाया हो (मिलाने के 20 मिनट बाद) |
| 90 | पके फलों का ज्यूस | बीज सहित | बीज सहित ज्यूस (छना हुआ) |

केला अचित या सचित एक समीक्षा

मूर्धन्य मुनिराजों ने आगम धरातल को सम्मुख रखते हुए अपनी प्रज्ञा से एवं श्रावक वर्ग के सहयोग से सन् 1933 के अजमेर साधु सम्मेलन में यह निर्णय किया था कि वर्तमान में जो प्रचलित केले हैं वे अचित हैं।

70 वर्ष पूर्व निर्णय हो जाने के बावजूद कोई सम्प्रदाय विशेष पुनः केले को सचित सिद्ध करने का दुष्प्रयास कर रहा है। वे इसी दुष्प्रयास में आगम का आधार इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं- 'भगवती सूत्र के बाइसवें शतक के प्रथम वर्ग में इस प्रकार वर्णन है कि-ताल, तमाल, यावत् कदली (केला) वलय वर्ग में आते हैं। वलय वर्ग की वनस्पति के मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और बीज ये दस अवयव होते हैं। अतः केले में भी मूल से बीज पर्यन्त दसों अवयव होने से वह सचित है।' लेकिन उनका यह कथन आगमानुकूल नहीं है! क्योंकि वलय वर्ग की प्रत्येक वनस्पति में दसों अवयव हो ही, ऐसा उल्लेख शास्त्र में नहीं है। संभव है वलय वर्ग की किन्हीं वनस्पतियों में कुछ अवयव तथा किन्हीं वनस्पतियों में कुछ अवयव हो। सभी वनस्पतियों में दसों अवयव होना आवश्यक नहीं है। इसी आशय के भाव "सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ" द्वारा प्रकाशित भगवती सूत्र के विवेचन में प्रकट किये गये हैं। वहाँ लिखा है कि "आगम निर्दिष्ट उत्कृष्ट अवगाहना प्रथमादि आरों की अपेक्षा ताल वर्ग के किसी भेद की समझनी चाहिये सभी की नहीं। दूसरी बात यदि उपलब्ध केले के वृक्ष को ताल वर्ग में नहीं माना जाए तो किस में माना जाए उसके लक्षण से तो ताल वर्ग में ही ग्रहण करना होगा।....." सुधर्म संघ द्वारा प्रकाशित भगवती सूत्र की विवेचना के अन्तर्गत आए इस वर्णन को यदि सही माना जाए तो इसमें एक बात सामने आती है कि इस सूत्र में आए वर्ग से संबंधित वर्णन वर्ग में रही हुई सभी वनस्पतियों के लिए समान रूप से लागू नहीं होती।

"इसी परिप्रेक्ष्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि वलय की वनस्पतियों के लिए जो दस अवयव बताये हैं। वे दसों अवयव वलय वर्ग की प्रत्येक वनस्पति में हो ऐसा आवश्यक नहीं है।" संसार में दिखने वाली वनस्पतियों से भी यही बात पुष्ट होती है। नारियल, खजूर आदि वृक्षों में शाखा दिखलाई

नहीं पड़ती है। जबकि दस अवयव में शाखा का भी कथन किया गया है।

ऐसे ही भगवती सूत्र 21वें शतक के 5वें वर्ग में इक्षु (गन्ना) आदि वनस्पतियों में भी समुच्चय रूप से मूल से लेकर बीज तक दस उद्देशक बतलाए हैं। गन्ने में स्कन्ध किसे माना जाए तथा फल किसे माना जाए? गन्ने के रसदार भाग को यदि फल माना जाए तो गन्ने में स्कन्ध नहीं होना यह मानना होगा तथा यदि गन्ने के रसदार भाग को स्कन्ध माना जाए तो गन्ने का फल किसे माना जाए? इसी तरह भगवतीसूत्र के 22वें शतक के चौथे एवं पाँचवें वर्ग में गुच्छ एवं गुल्म वर्ग का वर्णन किया है। उसके अन्तर्गत रहे गुलाब के पौधे में भी फल एवं बीज देखने को कहाँ मिलते हैं, जबकि शास्त्रकारों ने इसमें मूल से बीज पर्यन्त दस उद्देशक बताये हैं। भगवतीसूत्र के अन्य 2 स्थानों में भी ऐसा उल्लेख मिलता है जिससे यह बात सुस्पष्ट है कि वलय वर्ग की प्रत्येक वनस्पति में दसों अवयवों का होना आवश्यक नहीं है। इस अपेक्षा से वर्तमान में प्रचलित खाद्य केलों में भी बीज नहीं मानना संगत ही है। अतः भगवतीसूत्र के इस पाठ से केले में बीज सिद्ध करने का प्रयास गलत है। क्योंकि आगमिक वर्णन समुच्चय की अपेक्षा से किया गया है। इस प्रकार केले में बीज की मौजूदगी बताने के लिए आगम के जिस एकमात्र पाठ को प्रस्तुत किया जाता है उसका पूर्वापर संबंध देखने पर मालुम पड़ता है कि इस पाठ से केले में बीज सिद्ध नहीं हो सकता।

श्री वृहत् कल्पसूत्र व सैंकड़ों वर्ष पुराने उसके भाष्य पर दृष्टिपात करने पर सूर्यालोकवत् स्पष्ट हो जाता है कि पका हुआ केला अचित्त है। इस सूत्र में कहा गया है कि साधुओं को पका हुआ केला ताल प्रलम्ब भिन्न हो चाहे अभिन्न हो ग्रहण करना कल्पता है और साध्वियों को पका हुआ केला विधिपूर्वक टुकड़ा किया हुआ हो तो लेना कल्पता है? वृत्तिकार ने पक्व का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है अग्नि से संस्कृत जैसे बिल्व आदि। अपक्व अर्थात् जो अग्नि से, धूप से, कोठे के ताप आदि अन्य किसी भी प्रकार न पकाए गये हो फिर भी निर्जीव है जैसे ऋतु परिपक्व कदली फल। केले को निर्जीव बताने वाला यह भाष्य सैंकड़ों वर्ष पुराना है।

इसी तरह निशीथसूत्र के 15वें उद्देशक में 4920 गाथा पर संघदास गणि का भाष्य है। उस पर जिनदास की चूर्णि है उसमें कहा है—“आमं णाम जं

अपडालियं अग्निणा न पक्वन्ति अण्णेण वा केणइ पगारेण ण पक्वं निज्जीवं च जहा कदली फलं” अर्थात् अग्नि आदि किसी प्रकार से पका हुआ न होकर डाल पर पका हो वह निर्जीव जैसे **कदलीफल**। उक्त पाठ से स्पष्ट है कि खाने योग्य केले की जाति के फल में न कच्चे में बीज होते हैं और न पक्के में। आगमिक संदर्भों की चर्चा के बाद वर्तमान विज्ञान भी इस संदर्भ में अपना क्या मन्तव्य प्रस्तुत करता है? इसे जानना आवश्यक है।

वैज्ञानिक धरातल श्री रणजीतसिंह ने अपनी पुस्तक Fruits में लिखा है कि केला अन्य फलों से अलग बीज रहित फल है। बीज की परिभाषा करते हुए कहा है कि, बीज ऐसा परिपक्व बीजाण्ड है जिसमें Embryo आदि पाये जाते हैं जबकि केले में परिपक्व बीजाण्ड नहीं होता। वनस्पति विज्ञान का सामान्य जानकार भी इस बात को जानता है कि परागण क्रिया एवं निषेचन क्रिया के बाद ही Embryo का निर्माण हो सकता है जबकि केले में परागण क्रिया (Polli-Nation) एवं निषेचन क्रिया होती ही नहीं। केले का विकास कायिक जनिक होता है। जिसके लिए तकनीकी शब्द है “पार्थिनो कारपी” जिसका सम्बन्ध बीज रहित विकास से जुड़ा हुआ है। अतः बाजार में उपलब्ध खाद्य केलों में बीज नहीं होता। वनस्पति शास्त्र में जंगली केले जो खाने योग्य नहीं है। उसमें बीज माना गया है तथा इसमें परागण क्रिया एवं निषेचन क्रिया को स्वीकारा है।

Fruit Breeding अथवा ऐसे ही अन्य ग्रन्थों में कहा गया है कि आधुनिक तकनीक से Tissue Culture की विधि से खेती करने वाले भी केले की जड़ों से महीन टुकड़ा निकालकर उसके माध्यम से केले के वृक्ष उत्पन्न करते हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि केले की काली धारी में बीज नहीं होता अगर उसमें बीज पाया जाता तो Tissue Culture द्वारा बीज निकालकर खेती करना बहुत आसान होता।

विश्रुत विद्वान कृषि वैज्ञानिक डॉ. बालकृष्ण एवं महू E.V. College के रिटायर्ड वैज्ञानिक प्रोफेसर डॉ. कृष्णदास यादव भी लिखते हैं कि खाने के उपयोग में आने वाला केला बीज रहित है। केले का वृक्ष भी Sucker (भूमिगत स्कन्ध) के माध्यम से उगाया जाता है। केले में दिखने वाली काली धारी बीज रूप नहीं है। वह एवोरटेड ओव्यूल है, अर्थात् विनष्ट बीजाण्ड है

होने पर भी बाहर से पूर्णतः खुले दिखने वाले स्थानों में संवृत योनि वाले वायुकायिक जीव उत्पन्न होते ही हैं। मिटाई आदि की ऊपरी सतह खुली दिखने पर भी वहाँ संवृत योनि वाले फफूंद आदि वनस्पतिकायिक जीव उत्पन्न होते ही हैं। और तो और सूक्ष्म जीवों की एकान्ततः संवृत योनि होती है तथा उनकी उत्पत्ति संपूर्ण लोक में सर्वत्र होती है, चाहे वह स्थान बाहर से खुला दिखे या बंद अर्थात् जहाँ संवृत योनि वाले देव उत्पन्न होते हैं, वहाँ भी सूक्ष्म जीव उत्पन्न होते हैं तथा जहाँ विवृत योनि वाले द्वीन्द्रिय उत्पन्न होते हैं, ठीक उसी स्थान पर संवृत योनि वाले सूक्ष्म जीव भी पैदा होते हैं।

इसके विपरीत विवृत योनि वाले विकलेन्द्रिय जीव भी काजू, खजूर, फल आदि चारों तरफ से बंद पदार्थों में उत्पन्न होते हुए देखे जाते हैं। इतना ही नहीं, विवृत योनि वाले होने पर भी जब कृमि आदि द्वीन्द्रिय जीवों का शरीर के भीतर उत्पन्न होना प्रत्यक्ष से प्रमाणित है तो विवृत योनि होने के कारण असंज्ञी मनुष्यों की उत्पत्ति शरीर के भीतर होती है अतः योनि प्रकरण से भी स्पष्ट है कि शरीर के भीतर भी विवृत योनि होती ही है और वहाँ सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति सुसंभव है।

प्रश्न.४ यदि असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति शरीर के भीतर भी संभव होती तो विगय जीव कलेवरेसु यानि मृत शरीर को ही उत्पत्ति स्थान क्यों बताया, सिर्फ कलेवरेसु यानि 'शरीर' क्यों नहीं कहा?

उत्तर-विगयजीवकलेवरेसु कहकर यह बताया गया है कि मृत शरीर के प्रत्येक अंग प्रत्यंग में असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति संभव है जबकि जीवित शरीर के चमड़ी आदि में असंज्ञी मनुष्यों की उत्पत्ति कदाचित् न हो ऐसा भी संभव है। यदि जीव रहित शरीर को ही उत्पत्ति स्थान बताना होता तो उच्चारेसु वा, पासवणेसु वा के आगे भी विगयजीव विशेषण लगता। इससे भी ये प्रमाणित होता है कि जीव की विद्यमानता असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति में बाधक नहीं है।

प्रश्न.५ क्या शरीर की गर्मी, गर्म धरती, धूप आदि बाहर की गर्मी असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति में बाधक नहीं है?

उत्तर-नहीं है, क्योंकि असंज्ञी मनुष्य की शीत, उष्ण, शीतोष्ण तीनों प्रकार की योनि बताई है। इसलिए शरीर की गर्मी आदि उनकी उत्पत्ति में

बाधक नहीं है।

प्रमाण:- श्रीमत् प्रज्ञापना सूत्र 9वाँ पद

प्रश्न.६ क्या असंज्ञी मनुष्यों की हिंसा हमारी कायिक प्रवृत्ति से होती है?

उत्तर- नहीं। असंज्ञी मनुष्यों की हिंसा हमारी कायिक प्रवृत्ति से नहीं होती है, ऐसा शास्त्रों से स्पष्ट है।

प्रश्न.७ यदि असंज्ञी मनुष्यों की हिंसा नहीं होती, तो परिष्ठापनिका समिति का क्या औचित्य है?

उत्तर- 5वीं परिष्ठापनिका समिति का असंज्ञी मनुष्य की हिंसा से कोई संबंध नहीं है, क्योंकि श्री उत्तराध्ययन सूत्र के 24वें अध्ययन में जिन पदार्थों में असंज्ञी मनुष्य उत्पन्न नहीं होते, ऐसे भी अनेक पदार्थों (अनेषणीय, लीलन-फूलन युक्त आहार, वस्त्र, पात्र, शरीर आदि) के परिष्ठापन को 5वीं समिति के अन्तर्गत लिया है। श्री आचारांग सूत्र में “जीर्ण हो चुके वस्त्र परठ दे” ऐसा कहा है। श्री दशवैकालिक सूत्र में प्यास बुझाने में असमर्थ पानी को परठने का कथन है। श्री उत्तराध्ययन सूत्र के 24वें अध्ययन में निर्दोष स्थण्डिल के 10 बोलों में ऐसा कोई भी बोल नहीं है जो असंज्ञी मनुष्यों की विराधना से संबंध रखता है। उच्चारण का परिष्ठापन साधु की प्रायः प्रतिदिन की क्रिया का अंग होने से उनकी प्रधानता समझ कर उन्हें समिति के नाम में ग्रहण किया है, न कि असंज्ञी मनुष्यों की उत्पत्ति के कारण।

प्रश्न.८ असंज्ञी मनुष्य पंचेन्द्रिय, त्रस, बादर है फिर भी उनकी हिंसा (प्रतिघात) हमारी कायिक प्रवृत्ति से नहीं होने का क्या कारण है?

उत्तर- बादर नामकर्म के उदय वालों की सर्वदा हिंसा हो ही यह संभव नहीं है, उसके सैद्धान्तिक बिंदु इस प्रकार है-

1. बादर नाम कर्म का उदय अपर्याप्त विग्रहगति में रहे जीवों के भी होता है किन्तु उनका प्रतिघात संभव नहीं है।

2. तैजस कार्मण शरीर को अप्रतिघाती बताया है। (प्रमाण:- तत्वार्थ सूत्र में - अध्ययन 2- सूत्र 41)

3. लब्धि सम्पन्न भावितात्मा अणगार तलवार की धार पर या उस्तरे की धार पर रह सकते हैं तथा वहाँ रहते हुए छिन्न-भिन्न नहीं होते हैं क्योंकि उन पर शस्त्र संक्रमण नहीं करता है।

(प्रमाण:- श्रीमद् भगवती सूत्र शतक 18 उद्देशक 10)

4. आहारक शरीर में भी बादर नाम कर्म का उदय होता है किन्तु यह भी प्रतिघात को प्राप्त नहीं होता है।

(प्रमाण:-तत्त्वार्थ सूत्र अध्ययन 2 सूत्र 49)

5. औदारिक शरीर जीवों के उत्पत्ति के प्रथम, द्वितीय समय में भी प्रतिघात नहीं माना है।

6. श्री भगवती सूत्र में कहा है - ऋद्धि प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यच, मनुष्य अग्नि के बीच में से निकल जाते हैं फिर भी जलते नहीं हैं, उन पर शस्त्र का प्रभाव नहीं पड़ता। ऋद्धि प्राप्त तिर्यच, मनुष्यों की अवगाहना असंज्ञी मनुष्य की अवगाहना से असंख्येय गुणा अधिक है। इससे भली-भाँति ज्ञात होता है कि बादर, त्रस, पंचेन्द्रिय होने मात्र से कोई जीव प्रतिघात योग्य हो ही जाय, यह आवश्यक नहीं है।

(प्रमाण:-श्रीमद् भगवती सूत्र, शतक 14, उद्देशक 5)

प्रश्न.९ बादर किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस जीव में बादर परिणाम उत्पन्न हो, उसे बादर कहते हैं। बादर परिणाम के प्रभाव से जीव में ऐसी योग्यता प्रकट होती है कि वह इन्द्रियों के द्वारा जाना जा सके। अनेक बादर जीव जलाने से जलते हैं, काटने से कटते हैं और अनेक जलाने से जलते नहीं, काटने से कटते नहीं। एकेन्द्रियों के अलावा सभी संसारी जीव बादर ही होते हैं। एकेन्द्रिय जीवों में अनेक जीव बादर और अनेक जीव सूक्ष्म होते हैं। ज्ञातव्य है कि बादर परिणामों के बावजूद अनेक बादर जीव इन्द्रियों के द्वारा जाने नहीं जा सकते।

प्रश्न.१० सूक्ष्म किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस जीव में सूक्ष्म परिणाम हो, उसे सूक्ष्म कहते हैं। सूक्ष्म परिणाम के प्रभाव से अनन्त जीव समुदित (इकट्ठे) होने पर भी इन्द्रियों के द्वारा जाने नहीं जा सकते तथा वे जलाने से जलते नहीं, काटने से कटते

नहीं अर्थात् बादर जीवों की किसी क्रिया से प्रभावित नहीं होते। एकेन्द्रिय जीवों में ही सूक्ष्म परिणाम उत्पन्न होना संभव है।

प्रश्न.११ श्री आचारांग सूत्र (श्रुतस्कन्ध १/अध्ययन १/उद्देशक ६ सूत्र ४९) में प्रभु ने फरमाया है - अंडज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, सम्मूर्च्छिम, उद्भिज, औपपातिक आदि त्रस जीवों की हिंसा ३ करण, ३ योग से नहीं करना। इसमें सम्मूर्च्छिम की हिंसा का निषेध किया है फिर किस आधार से कहते हैं कि असंज्ञी मनुष्यों (सम्मूर्च्छिम मनुष्य) की हमारी काया से हिंसा नहीं होती?

उत्तर- शास्त्रकार यहाँ सामुदायिक रूप से कथन कर रहे हैं। इन भेदों में जिनकी कायिक हिंसा संभव हो, उनकी कायिक हिंसा न करे तथा जिनकी वाचिक एवं मानसिक हिंसा संभव है, उनकी वाचिक व मानसिक हिंसा न करे।

क्या मुनि नैरयिक जीवों की कायिक हिंसा कर सकता है? उत्तर - नहीं कर सकता, तो क्या यहाँ औपपातिक शब्द से यह समझ लिया जाय कि नैरयिक भी औपपातिक त्रस है अतः मुनि की या किसी भी मनुष्य की कायिक प्रवृत्तियों से उसकी भी हिंसा संभव है? उत्तर- नहीं, ऐसा समझना आगम का सही अर्थ नहीं है तथा श्री दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन में - “से सुहुमं वा बायरं वा” मुनि सूक्ष्म या बादर जीवों की जीवन पर्यन्त तीन करण तीन योग से हिंसा न करे।

श्री दशवैकालिक सूत्र के 6वें अध्ययन में कहा है- पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक की तीन करण तीन योग से हिंसा नहीं करते। इसके आधार पर कोई यह अर्थ निकाले कि सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक की भी काया से हिंसा हो सकती है तो यह अर्थ संगत नहीं है। यहाँ पृथ्वीकायिक आदि का सामान्य कथन है। चूँकि सूक्ष्म जीवों की काया से हिंसा संभव नहीं है यहाँ काया से हिंसा के प्रसंग पर पृथ्वीकायिक से बादर पृथ्वीकायिक अर्थ ही लिया जाएगा, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक नहीं।

इसी प्रकार सम्मूर्च्छिम की हिंसा न करने का जो विधान है, उससे कोई यह अर्थ निकाले कि सम्मूर्च्छिम मनुष्य (असंज्ञी मनुष्य) की भी काया से

हिंसा हो सकती है, तो यह ठीक नहीं है। यहाँ सम्मूर्च्छिम का कथन है जिसमें असंज्ञी तिर्यच पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि अनेक जीव सम्मिलित है, अतः इस पाठ से भी असंज्ञी मनुष्यों की काया से विराधना न होना सिद्ध है।

प्रश्न.१२ यदि असंज्ञी मनुष्यों की विराधना नहीं होती तो फिर “जहाँ सूर्य की किरणें न पड़े वहाँ परठना” ऐसी मान्यता के पीछे क्या कारण है?

उत्तर- ऐसी मान्यता कुछ सैकड़ों वर्षों से ही है, इसका कारण “अणुग्गए सूरिए” का अर्थ “जहाँ सूर्य की किरणें न पड़े” ऐसा समझ लिया गया। जबकि प्राचीन ग्रंथों में, बृहत्कल्प भाष्यवृत्ति में, निशीथ भाष्य चूर्ण में “अणुग्गए सूरिए” का अर्थ “सूर्योदय से पहले” ही किया गया है।

जो ‘अणुग्गए सूरिए’ का ‘सूर्य की किरणें न पड़े वैसा स्थान’ यह अर्थ करते हैं, वे रात्रि के चतुर्थ प्रहर में मल-मूत्र की बाधा से निवृत्त हों तो सूर्य की किरणें पड़े, वैसे स्थान पर परठेंगे। मल का प्रातः काल के कुछ घण्टों में सूखना प्रायः अशक्य है। उसके बाद असंज्ञी मनुष्यों से युक्त उस मल पर सूर्य की प्रखर किरणें पड़ेगी तो असंज्ञी मनुष्यों की विराधना मानने वालों के मत में उन असंज्ञी मनुष्यों को तेज धूप से बहुत पीड़ा होगी। जिन असंज्ञी मनुष्यों के लिए तथाकथित रूप से मनुष्य शरीर की 37°C (सैंतीस डिग्री सेन्टीग्रेड) की गर्मी भी शस्त्र है तो 45°C एवं 50°C की भयानक गर्मी को भला वे कैसे सहन कर पायेंगे? इस तरीके से असंज्ञी मनुष्यों की रक्षा का घोष करने वाले जानबूझकर सूर्य की किरणों से प्रकाशित होने वाले क्षेत्र में परठकर क्या त्रस, पंचेन्द्रिय मनुष्य की जानबूझकर हिंसा करने वाले एवं उन्हें धूप के ताप से पीड़ित होने को मजबूर करने वाले नहीं होंगे? इतना ही नहीं दिन में भी धूप में मल विसर्जन करने पर भी उसका एक मुहूर्त में पूर्णतः सूख जाना अशक्यप्रायः है एवं मल ही नहीं, मूत्र एवं वस्त्र धोया हुआ पानी इत्यादि भी परिष्ठापन के बाद हर मौसम में सूख ही जाए, ऐसा नहीं कहा जा सकता। ऐसी स्थिति में उन्हें धूप में परठना क्या उत्पन्न होने वाले जीवों को पीड़ा पहुँचाना नहीं होगा?

ज्ञातव्य है कि असंज्ञी मनुष्यों की कायिक प्रवृत्तियों से विराधना मानने

वालों में भी मल-मूत्र से निवृत्त होते ही तुरन्त नहीं परठने पर प्रायश्चित्त नहीं है। विभिन्न परम्पराओं में असंज्ञी मनुष्यों की उत्पत्ति के मान्य कालमान 24 मिनट, 30 मिनट या 48 मिनट से पूर्व परठने पर प्रायश्चित्त नहीं आता है। विचारणीय है कि 48 मिनट से 5-7 मिनट पहले कोई मुनि जल्दी सूखने हेतु धूप में परठे तो 5-7 मिनट के बाद उस गीले मल या मूत्र आदि पर धूप की तीक्ष्ण किरणों से क्या असंज्ञी मनुष्यों की तथाकथित विराधना का प्रसंग उपस्थित नहीं होगा, एवं यदि उन्हें धूप से बचाने के लिए जानबूझकर छाया में परठे तो जल्दी नहीं सूखने पर वैसा मानने वालों को निरन्तर जन्म मरण रूप विराधना का भागी बनना होगा? ऐसी स्थिति में ‘एक तरफ कुआँ एवं दूसरी तरफ खाई’ वाली कहावत चरितार्थ होगी।

इस प्रकार मुनि दिन के समय में-

1. न जानबूझकर धूप में परठ सकेगा।
2. न जानबूझकर छाया में परठ सकेगा।

साथ ही मुनि रात्रि के समय में भी

1. न जानबूझकर सूर्य की किरणें पड़े, ऐसे स्थान पर परठ सकेगा, क्योंकि जानबूझकर सूर्य की किरणें पड़े, ऐसे स्थान पर परठने से असंज्ञी मनुष्यों की धूप से तथाकथित विराधना होगी। ?
2. न जानबूझकर सूर्य की किरणें न पड़े, ऐसे स्थान पर परठ सकेगा, क्योंकि जल्दी न सूखने पर निरन्तर जन्म-मरण रूप तथाकथित विराधना ज्यादा होगी। ?

इस प्रकार से असंज्ञी मनुष्यों की विराधना की मान्यता अनागमिक होने के कारण घोर असमंजस एवं किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति उत्पन्न करती है एवं शुद्ध मुनित्व की आराधना को ‘असंभव’ की कोटि में ला खड़ा करती है।

तीर्थंकर देवों का यह महामार्ग, संयममार्ग ऋजुभूत, सरल एवं स्पष्ट है। इसमें कहीं असमंजस या एक तरफ कुआँ, एक तरफ खाई वाली समस्या नहीं आती है। तीर्थंकर प्रभु की वाणी के अनुसार असंज्ञी मनुष्यों की हमारी कायिक प्रवृत्तियों से विराधना सर्वथा असंभव है।

प्रश्न.१३ असंज्ञी मनुष्य की विराधना हमारी कायिक प्रवृत्ति से नहीं होती है, ऐसा शास्त्र के किस मूलपाठ से निकलता है?

उत्तर-असंज्ञी मनुष्य की विराधना हमारी कायिक प्रवृत्ति से नहीं होती है ऐसा शास्त्रपाठ से सुसिद्ध है।

श्री निशीथ सूत्र के तृतीय उद्देशक के अंतिम सूत्र में रात्रि में मल-मूत्र का पात्र में विसर्जन कर दीर्घकाल तक रखकर सूर्योदय के बाद परठने का विधान है।

प्रश्न.१४ संयमी साधु के लिए मल-मूत्र त्याग का क्या विधान है?

उत्तर- बाहर जाकर वहीं बैठकर मल-मूत्र त्याग करना उत्सर्ग मार्ग है और मात्रक (पात्र) में मल-मूत्र त्यागना (करना) अपवाद मार्ग है। श्री निशीथ सूत्र में- “सूर्यास्त से पूर्व उच्चार प्रस्रवण हेतु 3 तरह की भूमि प्रतिलेखन करना” तथा “रात्रि या विकाल में पात्र में विसर्जित कर दिया हो तो उस उच्चार प्रस्रवण को रात्रि या विकाल में नहीं परठे किन्तु सूर्योदय के बाद ही परठे, ऐसा कहा है। (1) रात्रि में परठने का तो मना किया है, (2) रात्रि के लिए ही दिन में भूमि प्रतिलेखन करने का कहा है। इन दोनों बातों से सिद्ध होता है कि भूमि प्रतिलेखन, वहीं जाकर बैठने की अपेक्षा से है जो कि उत्सर्ग मार्ग है। मात्रक में करना अपवाद मार्ग है। मात्रक में करना तो अपवाद है ही, रात्रि में ‘परठना’ भी अपवाद है।

प्रश्न.१५ उत्सर्ग और अपवाद का तात्पर्य क्या है?

उत्तर- निर्दोष चारित्र की आराधना के लिए संयमी साधकों को जिन नियमों का पालन करना अनिवार्य है, वह उत्सर्ग मार्ग है और कारण के उपस्थित होने पर विवशतावश जिन दोषों का सेवन करना पड़ता है वह अपवाद मार्ग है।

प्रश्न.१६ जहाँ उच्चार प्रस्रवण विसर्जन की भूमि है वहीं जाकर बैठकर मल-मूत्र विसर्जन करना उत्सर्ग मार्ग है तो मात्रक में करके अपवाद का सेवन किस कारण से करते हैं?

उत्तर-श्री निशीथ सूत्र के भाष्य एवं चूर्ण में मात्रक में मल-मूत्र विसर्जन के अनेक कारण बताए हैं। वे इस प्रकार हैं-

1. ग्लान मल-मूत्र विसर्जन की भूमि तक जाने में समर्थ न हो तो,
2. संलेखना आदि अनशन करने वाला मुनि जाने में समर्थ न हो तो,
3. मल-मूत्र विसर्जन की भूमि न हो तो,
4. मल-मूत्र विसर्जन की भूमि अनेक गृहस्थों से युक्त हो तो,
5. मार्ग में सचित पृथ्वी आदि हो तो,
6. रात्रि में उपाश्रय से निकलते हुए जंगली जानवरों का भय हो तो
7. चोरों का भय हो तो,
8. सर्प का भय हो तो,
9. प्रमेह और मूत्रशर्करा, इन दो तरह के रोगों के कारण बार-बार मूत्र विसर्जन करना पड़ता हो तो,
10. अनुयोग कथन या धर्मकथा करना हो तो,
11. मोक प्रतिमा स्वीकार की हुई हो तो,
12. बाधा की तीव्रता के कारण मल-मूत्र विसर्जन की भूमि तक जाने में समर्थ नहीं हो तो,
13. मूत्र विसर्जन की भूमि अल्प हो या जीव सहित हो तो,
14. बाहर साधु के स्वज्ञातिजन आदि गृहस्थ हो तो,
15. घर के अन्दर बाड़े आदि में विसर्जन करने से शय्यातर को अप्रीति होती हो तो,
16. स्त्रियों का भी मूत्र विसर्जन हेतु उसी भूमि पर जाना होने से भूमि स्त्रियों से भाव प्रतिबद्ध हो तो,
17. वर्षा, धूँवर आदि गिरने पर जीवदया का प्रयोजन हो तो,
18. विद्या (मंत्र प्रयोग) सम्बन्धी उपचार में “मूत्र से छींटना है” इस कारण से।

जहाँ इन कारणों में वर्षा, धूँवर आदि अप्कायिक जीव तथा सचित पृथ्वी रूप पृथ्वीकायिक जीव इन स्थावर जीवों की रक्षा हेतु भी मात्रक में करके सूर्योदय के पश्चात् परठने का ही बताया है, वहाँ असंज्ञी मनुष्य जो कि पंचेन्द्रिय है, फिर भी उनकी विराधना सम्बन्धी कोई चर्चा मात्र भी नहीं है।

प्रश्न.१७ रात्रि में परठना अपवाद क्यों है?

उत्तर-श्री निशीथ सूत्र के भाष्य एवं चूर्णि में इसके दोष बताए हैं कि वह आज्ञा भंग, अनवस्था, मिथ्यात्व तथा आत्म विराधना व संयम विराधना को प्राप्त करता है, इसलिए मुनि सूर्योदय होने पर ही परठे।

प्रश्न.१८ रात्रि में मात्रक में रहे मल-मूत्र को नहीं परठने का क्या कारण है?

उत्तर-श्री निशीथ सूत्र में भगवान की स्पष्ट आज्ञा इसमें प्रमाणभूत है। केवली भगवन्तों के असीम ज्ञान के समक्ष हमारी मति बहुत छोटी है। सर्वज्ञ भगवान ही नहीं भाष्यकारों ने भी स्पष्ट रूप से मात्रक में विसर्जित मल-मूत्र को रात्रि में बाहर परठने का निषेध किया है। अपवाद में ही रात्रि में मात्रकगत मल-मूत्र परठा जा सकता है, अन्यथा नहीं। उपद्रव हो या नहीं, बाहर रात्रि को मात्रकगत मल-मूत्र परठना ही निषिद्ध है।

प्रश्न.१९ क्या जब बाहर बारिश गिर रही हो उस समय पानी के जीवों की रक्षा के लिये उच्चार आदि परठने का निषेध है?

उत्तर-हाँ, इससे भी यही स्पष्ट है कि असंज्ञी मनुष्यों की हमारे स्पर्श आदि से विराधना नहीं होती। अन्यथा क्या एकेन्द्रिय की रक्षा के लिए पंचेन्द्रिय की उपेक्षा होती?

प्रश्न.२० क्या मात्रक को बार-बार व्यवस्थित हिलाने से भी सम्मूर्च्छिम मनुष्य की उत्पत्ति नहीं होती है?

उत्तर-समाधान- मात्रक को बार-बार हिलाने से असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति होने, नहीं होने का कोई सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि सैद्धान्तिक दृष्टि से देखा जाए तो गतिशीलता का योनि नाश से कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। तेज गति से बहती नदी में अप्कायिक, तुफान में वायुकायिक, बहती विद्युत में तेजस्कायिक आदि की उत्पत्ति का निषेध नहीं माना जाता है और तो और नगर के बहते गटर में भी असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति मान रहे हैं अतः हिलाते रहने से सम्मूर्च्छिम मनुष्य की उत्पत्ति नहीं होती, यह कथन ठीक नहीं है।

प्रश्न.२१ यदि साधु का पैर मल-मूत्र से लिप्त हो जाए तो शास्त्रों में क्या करने का विधान है?

उत्तर-श्रीमद् आचारांग सूत्र में मल-मूत्रादि से लिप्त पैर को अचित्त कंकर, पत्थर वगैरह से मल कर एवं घिस कर साफ करने का विधान है, यदि असंज्ञी मनुष्य की विराधना शक्य होती तो जैसे-बारिश से भीगी हुई काया को पौछने का श्रीमत् दशवैकालिक सूत्र में निषेध है वैसे ही मल-मूत्र की सफाई का भी निषेध होता।

प्रमाण:- श्रीमद् आचारांग सूत्र (दूसरा श्रुतस्कन्ध, पहला अध्ययन, पंचम उद्देशक, सूत्र 353), श्रीमत् दशवैकालिक सूत्र (8वां अध्ययन, 7वीं गाथा)

प्रश्न.२२ यदि मुनि के मल में कृमि हो तो उनकी रक्षा का क्या विधान है?

उत्तर- ओघनिर्युक्ति में कहा गया है कि- यदि किसी मुनि के पेट में कीड़े पड़ जाये एवं मल में कीड़े निकले तो उसके लिए विधान है कि वह मुनि छाया वाले स्थान में मल का विसर्जन करे। कदाचित् छाया न मिले तो मल विसर्जन के पश्चात् एक मुहूर्त तक (मल को छाया देता हुआ) बैठा रहे। वे कृमि (कीड़े) उतनी देर में स्वतः ही कालधर्म को प्राप्त हो जाते हैं। इससे भी समझ सकते हैं कि यदि कृमियों की तरह ही असंज्ञी मनुष्यों की कायिक विराधना संभव होती तो उनकी रक्षा के लिए भी उल्लेख होता, किन्तु चूँकि असंज्ञी मनुष्य की कायिक विराधना संभव ही नहीं है अतः उनकी रक्षा के लिए कोई वैसा उल्लेख नहीं किया गया।

(प्रमाण:- ओघनिर्युक्ति)

प्रश्न.२३ मृत शरीर को जलाने से किन जीवों की विराधना का उल्लेख है?

उत्तर-मृत शरीर को जलाने में विकलेन्द्रिय जीवों की हिंसा बताई गई है। असंज्ञी मनुष्य जो कि पंचेन्द्रिय है, उनकी हिंसा का अक्षर मात्र भी उल्लेख नहीं है तथा प्रायश्चित्त विधान में भी मृतक सम्बन्धी प्रायश्चित्त चतुर्गुरु है। यह प्रायश्चित्त असंज्ञी मनुष्य सम्बन्धी नहीं है क्योंकि पंचेन्द्रिय सम्बन्धी प्रायश्चित्त की शुरुआत ही षट्गुरु (छःगुरु) से होती है। मृतक प्रकरण में पंचेन्द्रिय जितना प्रायश्चित्त का नहीं बताया जाना इस तथ्य को पुष्ट करता है कि असंज्ञी मनुष्यों की हमारी कायिक प्रवृत्तियों से विराधना

नहीं होती।

प्रश्न.२४ असंज्ञी मनुष्यों की विराधना सम्बन्धी प्रायश्चित्त का कोई विधान क्या किसी भी आगम एवं प्राचीन भाष्य, चूर्ण, टीका में है?

उत्तर- विभिन्न दोषों के लिये शास्त्रों एवं अन्य ग्रन्थों में प्रायश्चित्त का विस्तृत उल्लेख प्राप्त है। उनमें पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पशु आदि की हिंसा सम्बन्धी प्रायश्चित्त का उल्लेख है लेकिन असंज्ञी मनुष्यों की विराधना का प्रायश्चित्त पाठ कहीं उल्लिखित नहीं है। जबकि उच्चार प्रस्रवण आदि का परिष्ठापन मुनि की दिनचर्या से जुड़ा एक आवश्यक अंग है। यह भी इस तथ्य का प्रबल संसूचक है कि असंज्ञी मनुष्य की कायिक विराधना संभव नहीं है।

प्रश्न.२५ असंज्ञी मनुष्य की विराधना मानने की परंपरा कब से चली?

उत्तर-आगम, भाष्य, टीका, चूर्ण आदि में तो असंज्ञी मनुष्य की हिंसा सम्बन्धी कोई चर्चा ही नहीं है। अतः यह निश्चित है कि यह परंपरा टीकाओं के काल से काफी बाद की है अर्थात् भगवान महावीर के निर्वाण के 1800-2000 वर्षों के बाद की ही है। कोई भी परंपरा कुछ समय से चले आने मात्र से उसे अविच्छिन्न रूप से चलना कहना ठीक नहीं है। आज चारों संप्रदायों में पुस्तकों का भरपूर उपयोग हो रहा है तो क्या यह माना जाए कि पुस्तकें रखने और उनका उपयोग करने की परंपरा भगवान महावीर के समय से चली आ रही है? नहीं। यदि भविष्य की बात करें तो चारों संप्रदायों में आज से 2000 वर्षों बाद माइक का प्रयोग होता देखकर क्या यह मानना ठीक रहेगा कि साधु का माइक में बोलने आदि की परंपरा भी भगवान महावीर के समय से अविच्छिन्न चली आ रही है?

असंज्ञीमनुष्य सम्बन्धी अन्य जिज्ञासाएं

प्रश्न.१ असंज्ञी मनुष्य की स्थिति १ सेकण्ड के लगभग २३वें हिस्से प्रमाण बताई है उनका गणित क्या है?

उत्तर-१ सेकण्ड के लगभग 23वें हिस्से प्रमाण का गणित:-

1 मुहूर्त में = 48 मिनट (1 मिनट में 60 सेकण्ड) होते हैं।
= 48 X 60 सेकण्ड
= 2880 सेकण्ड

1 मुहूर्त में = 1,67,77,216 आवलिका
तो

1 सेकण्ड में = $\frac{1,67,77,216}{2880}$ = 5825.42 आवलिका

(नोट:- क्षुल्लक भव = 256 आवलिका)

5825.42 आवलिका = 1 सेकण्ड

1 आवलिका = 1 ÷ 5825.42 सेकण्ड

256 आवलिका = (1 ÷ 5825.42) X 256 सेकण्ड

= 1 ÷ 22.75 सेकण्ड

= 1/23 सेकण्ड

(लगभग 1 सेकण्ड का 23वां हिस्सा)

प्रश्न.२ शरीर के भीतर रहे रक्तादि में असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति क्या निरंतर होती है?

उत्तर- असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति की निरन्तरता न शरीर के भीतर संभव है, न ही शरीर के बाहर क्योंकि श्री प्रज्ञापना सूत्र के छठे पद में असंज्ञी मनुष्य की उत्पत्ति का विरह उत्कृष्ट 24 मुहूर्त बताया है।

प्रश्न.३ शरीर के भीतर का मल अशुचि रूप है तो क्या वह अस्वाध्याय का कारण है?

उत्तर-शरीर के भीतर का मल अशुचि रूप तो है ही, पर उसके कारण अस्वाध्याय नहीं है। अस्वाध्यायिक प्रकरण में “अशुचि की समीपता” को अस्वाध्याय का कारण बताया है और अशुचि की समीपता तभी मानी जाती है जब उसकी गंध आये या दिखाई दे। शरीर के भीतर रहा मल आदि न तो देखे जा सकते हैं, न ही सर्वदा उनकी गंध आती है। श्री स्थानांग सूत्र में औदारिक सम्बन्धी 10 अस्वाध्यायिक बताये हैं, उनमें एक “असुइसामंते”

